मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

४९

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी

स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद

2009

Jain Education International For Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसंधान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

४९

सम्पादकः
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२००९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसन्धान ४९

आद्य सम्पादकः **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादकः **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्कः C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१

प्रकाशकः **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थानः (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१

मूल्यः Rs. 150-00

मुद्रकः

क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोनः ०७९-२७४९४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

परम्परा अने संशोधन - ए बे वच्चेनो तफावत संक्षेपमां समजवो होय तो ते आम समजी शकाय : परम्परा श्रद्धागम्य, आज्ञाग्राह्य बाबत छे, ज्यारे संशोधन ते बुद्धिगम्य पदार्थ छे. घणा लोको श्रद्धा अने बुद्धिने एकबीजानां विरोधी तत्त्वो तरीके ज जोतां होय छे. तेमना अभिप्राय प्रमाणे श्रद्धागम्य के श्रद्धेय बाबतने बुद्धिना मापियाथी मापवी न जोईए; बल्के तेम मापवी ते अपराध गणाय. श्रद्धागम्य के आज्ञाग्राह्य बाबतने, कशा ज विकल्प के विमर्श विना जेमनी तेम स्वीकारी ज लेवी पडे. तेमां कोई ननु नच न करी शकाय; करीए तो मोटो अनर्थ सर्जाई जाय.

भगवान महावीरदेवे कह्युं छे ते आनी सामे मूकीए तो आ अभिप्राय जरा कठे तेवो जणाय. भगवाने दरेक बाबतने तेना हेतु, कारण, व्याकरण आदि सहित ज कही छे. सवाल ए थाय के जो कोई पण वातने श्रद्धाथी ज मानी लेवानी होय तो हेतु, कारण वगेरे दर्शाववानी जरूर ज क्यां रहे छे ?

श्रीहरिभद्राचार्ये पण 'युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः' एवुं ज कह्युं छे. 'आज्ञा पण युक्तिथी के बुद्धिथी गम्य होय ते ज श्रद्धेय' एवो अर्थ आ उक्ति थकी काढी शकाय.

संशोधन ते आज्ञा, श्रद्धा तथा परम्परानुं विरोधी ज होय एम मानी लेवुं ए पण, उपरोक्त सन्दर्भोना परिप्रेक्ष्यमां, वधु पडतुं न लागे ?

*

जैन तत्त्वचिन्तन नयवादने अनुसरे छे. एक ज बाबत, विचार के पदार्थने जुदा जुदा अनेक दृष्टिकोणथी - Angle थी जोई शकाय, विचारी के प्रमाणी शकाय. जैन आगमोना विवरणकारोए एक एक बाबतने अनेक अनेक नयोनी नजरथी मूलवी छे, वर्णवी छे; घणीवार तो एवुंये जोवा मळे के एक दृष्टिकोण बीजा दृष्टिकोणनो छेद उडाडतो होय, अने छतां ते अमान्य के अग्राह्य न होय. सन्तुलन करतां आवडे तो आ पद्धतिमां तत्त्व ज तत्त्व सांपडे, अने ते एकमेकथी तद्दन जुदुं होय तो पण विरोधी के खण्डनात्मक न लागे, अने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धानो अंश पण खण्डित न थाय; वस्तुतः तो आ प्रकारना बौद्धिक आटापाटाथकी श्रद्धा वधु सुदृढ बने छे. अलबत्त, ते माटे चित्तनुं सहज औदार्य, विशाल चिन्तन अने भिन्न मतने सहन करवानी क्षमता होय ते जरूरी गणाय. संकुचित वलण होय तो तेवाने सामो विचार 'मिथ्यात्व' ज भासे, अने ते रीते विचारनारो मिथ्यात्वी लागे. दृष्टिदोषनो शो इलाज ? ।

*

'योगशतक' ए श्रीमान् हरिभद्राचार्यनो प्रसिद्ध योग-ग्रन्थ छे. तेमां ५०मी गाथा 'चतुःशरण प्रकीर्णक'नी गाथा छे. तेमां 'चतुःशरण'नी व्याख्या करतां आचार्यश्री लखे छे के : 'चतुःशरणगमनम्' - अर्हत्-सिद्ध-साधु-केवलिप्रज्ञप्त-धर्मशरणगमनम्, **आचार्योपाध्याययोः साधुष्वेवान्तर्भावात्**' । अर्थात्, अरिहंत, सिद्ध, साधु अने धर्म - ए ४ना शरणे जवानुं छे. आचार्य अने उपाध्याय ए बे तो 'साधु'मां ज समाई जाय छे.

आ वांच्युं त्यारे आचार्यो, ज्ञानीओ तथा तेमनी नयदृष्टि प्रत्ये अपार आदर उपज्यो. परमेष्ठी पांच छे, तेमने माटेनां, नवकारनां पद पण पांच प्रसिद्ध छे, ए जाणता होवा छतां, शास्त्रकारोए चार ज शरण वर्णव्यां, अने व्याख्याकारोए नयदृष्टिए तेनो केवो सरस उकेल आप्यो !

आ ज रीते, संशोधन द्वारा प्राप्त थतां तारणोने तेमज परम्पराप्राप्त पदार्थोने नयदृष्टिए तपासवामां आवे, तो ते बन्ने परम्पर विरुद्ध लागवाने बदले एकमेकनां पूरक थाय, तेवी पूरी सम्भावना छे. अने हा, आम करवानी साथे साथे, आपणे सर्वज्ञ नथी ए वात सतत स्मरणमां राखवी जोईए.

- शी०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अनुसन्धान'मां रस लेता सुज्ञ जनोने विज्ञप्ति

आपना हाथमां आ ४९मो अंक छे. ई. १९९२-९३ थी शरु थयेली आ अनुसन्धान-यात्रा हवे ५० मा मुकाम पहोंची रही छे. एकले हाथे आ यात्रा चालु राखवामां कठिनाई जरूर छे, परन्तु स्वाध्यायनो आनन्द तेथी घणो अधिक होय छे.

आगामी अंक ५०मा अंक तरीके छपाशे. सुज्ञ जनोने, मुनिवरोने तथा देश-विदेशना विद्वानोने निवेदन के ५०मा अंक माटे आप यथाशीघ्र आपना शोधलेख, सम्पादित अप्रकट प्राचीन रचनाओ वगेरे पाठवजो. जो आपने आ पत्रिका गमती होय, आमां रस पडतो होय, तो अवश्य सामग्री मोकलजो. सामग्री मोकलवानी समयमर्यादा डिसेम्बर-२००९ रहेशे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

अज्ञातकर्तृकः: शब्दसञ्चयः ॥	सं. मुनि धर्मकीर्तिविजयः	१
श्री जैन तीर्थावली द्वात्रिंशिका	सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	९८
पांच हरियाळी	- उपाध्याय भुवनचन्द्र	१०४
श्री आचार्यजीना बार मसवाडा	सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ	१०८
त्रण लघु रचनाओ	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	११५
विमलहंसगणि प्रणीत : श्री मेघागणि निर्वाण रास	म. विनयसागर	१२२
श्री कुशलवर्द्धनरचित : श्री विजयहीरसूरि स्वाध्याय	म. विनयसागर	१२५
चतुर्विंशति-जिन-स्तुति के प्रणेता चारित्रसुन्दरगणि ही हैं	म. विनयसागर	१२७
विहंगावलोकन	म. विनयसागर	१३०
अज्ञातकर्तृक : भोजनविच्छित्तिः	सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री	१३१
टूंक नोंध : 'पुष्पमाला चिंतवणी'मां सूचित 'क्रीडा' अंगे विवरण		१४१
'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन ग्रन्थों मे प्रदर्शित संभ्रमावस्था	ले. शोधछात्रा : डॉ. कौमुदी बलदोटा	१४४
विहंगावलोकन (अंक ४६-४७-४८नुं)	- उपा. भुवनचन्द्र	१६९
नवां प्रकाशनो		
आनन्दप्रद माहिती		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृकः
शब्दसञ्चयः ॥

सं. मुनि धर्मकीर्तिविजयः

प्रवर्तक श्रीकान्तिविजय जैन शास्त्रसंग्रह-श्री आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिर वडोदरा- नरसिंहजीनी पोलमांथी शब्दसंचय नामनी ३ हस्तप्रतो प्राप्त थई. आ ३ प्रतो सामे राखी प्रस्तुत कृतिनुं सम्पादन कर्युं छे. अद्यावधि शब्दरूपावली अनेक प्रकाशित थई चूकी छे. तथापि आ कृतिनुं महत्त्व ए छे के कर्ताए शब्दनां रूपोनी सिद्धि माटे एक ज स्थाने सिद्धहेमव्याकरण तथा कातन्त्रव्याकरणनां सूत्रोनो उपयोग कर्यो छे. स्वतन्त्रपणे सिद्धहेमव्याकरणनां सूत्रोनो उपयोग थयो होय, कोईक स्थाने कातन्त्र व्याकरणनां सूत्रोनो उपयोग तो कोईक स्थाने पाणिनीव्याकरणनां सूत्रोनो उपयोग थयो होय तेवुं जोवा मळे छे. परंतु एकज स्थाने सिद्धहेमव्याकरण अने कातन्त्रव्याकरणनां सूत्रोनो उल्लेख होय तेवी कृति भाग्ये ज जोवा मळे. प्रस्तुत कृतिमां बन्ने व्याकरणनो उपयोग करायो छे.

बीजुं एक कारण ए छे के आ कृति ५२१ वर्ष पूर्वे लखायेल छे. ते वखते पाणिनि, कातन्त्र, सारस्वत, भोज, ऐन्द्र, सिद्धहेम-इत्यादि अनेक व्याकरण प्रचलित हतां. पूर्वे जैनोमां सिद्धहेम, कातन्त्र तेमज सारस्वत व्याकरण विशेषे प्रचलित हतां. जो के आजे तो सिद्धहेम अने पाणिनि सिवायना व्याकरणनो उपयोग ज रह्यो नथी. अने तेथी ज सिद्धहेम अने कातन्त्र व्याकरणना सूत्रोना उल्लेखयुक्त कृति मळे ते महत्त्वनी वात बने छे.

प्रस्तुत कृतिना सम्पादनमां ३ हस्तप्रतोनो उपयोग करायो छे. तेमां शब्दसंचय, पत्र-१९-आ प्रतने A संज्ञा आपवामां आवी छे. आनी विशेषता ए छे के शब्दनां रूपोनी सिद्धि माटे विशेषे टिप्पणरूपे तो कुत्रचित् प्रतिमध्ये ज सिद्धहेम तथा कातन्त्र व्याकरणना सूत्रोनो उपयोग करवामां आवेल छे. आ कृति कर्ताए स्वहस्ते लखी छे ते महत्त्वनी वात छे. प्रत्यन्ते उल्लेख मळे छे - संवत १५४४ वर्षे भाद्रवा सुदि पूदिने श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीश्रीभुवनप्रभसूरि वा० पूर्णकलशस्वहस्तेन लिखितम् । आ कृतिना कर्ता विषे अन्य कोई माहिती उपलब्ध थती नथी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दसंचय पत्र १८- आ प्रतिने B संज्ञा आपवामां आवी छे. आ प्रति अने A संज्ञक प्रति समान छे, फर्क एटलो ज छे के आ प्रतिमां कोईक कोईक स्थाने कातन्त्रव्याकरणनां सूत्रोनो उल्लेख तेमज कठिन शब्दोना अर्थ जणावेल छे. आमां कर्तादिनो कोई ज उल्लेख नथी.

शब्दसंचय तथा धातुपारायणावचूरि, पत्र-७ - आ प्रतिने C संज्ञा आपवामां आवेल छे. आ प्रतिमां शब्दोनां रूपनी सिद्धि माटे केवल सिद्धहेमव्याकरणनां सूत्रोनो ज उल्लेख छे. आ प्रतिमां दरेक शब्दोनां बधां रूपो नथी जणाव्यां, परंतु घणी वखत मुख्य मुख्य रूपो ज दर्शावेल छे. प्रत्यन्ते संख्यावाचकशब्दोनां रूपो, एवं धातु-प्रत्ययना अनुबन्धनुं फल जणावेल छे. आमां कर्तादिनो कोई ज उल्लेख मळतो नथी.

आ त्रणे प्रतिमां ज्यां शुद्धपाठ जणायो तेने ग्रहण करी अन्य पाठ टिप्पणमां पाठान्तर रूपे मूकेल छे. केटलांक स्थानोमां त्रणे हस्तप्रतमां अशुद्ध पाठ छे त्यारे मूलमां शुद्ध पाठ लखी टिप्पणमां त्रणे प्रतोना पाठ पाठान्तर रूपे मूकेल छे. पाठान्तर, शब्दरूपोनी सिद्धिनां सूत्रो तेमज कठिन शब्दोना अर्थ, जेमके रै = लक्ष्मी, ग्लौ = चन्द्र इत्यादिनो टिप्पणमां समावेश करायो छे. अहीं जे स्वयं उमेरो करायो छे तेने चोरस [ ] कौंस कर्यो छे. कोईक स्थाने टिप्पणनां सूत्रो अपूर्ण छे तेने [ ] कौंसमां उमेरी दीधा छे. बन्ने व्याकरणनां सूत्रोनो क्रमांक [ ] कौंसमां लखवामां आवेल छे. अने जे पाठ शुद्धीकरणरूपे लखेल छे तेने गोल ( ) कौंस करवामां आवेल छे.

विशेषता ए के A.B. संज्ञक प्रतिमां वृक्षशब्दनां रूपो छे तो C. संज्ञक प्रतिमां देवशब्दनां रूपो छे. आवुं अनेक स्थाने छे. अनेक स्थाने रूपोमां पण मतान्तर छे. जेमके - A.B. प्रति-वातप्रमी, C. प्रति - वातप्रम्यि, A.B. प्रति-सुमनः, C. प्रति-सुमनाः - इत्यादि ।

३-४ एवां स्थानो छे ज्यां स्पष्टता थती नथी त्यां प्रश्नार्थचिह्न करेल छे. २-३ टिप्पण एवी छे जे बिलकुल अवाच्य छे तेथी तेने छोडी दीधी छे.

अन्ते, आ प्रतिनी फोटोकोपी करी आपवा बदल श्री आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिरना अग्रणीजनोनो आभार. फोटा श्रीमहेन्द्रभाई रमणलाल शाह, वडोदरा-वाळाए पाडी आप्या छे, तेमनो आभार.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दसञ्चयः

॥ ॐ नमः ॥

शब्दाम्भोधिसमुल्लास-रसिकं श्रीजिनं सदा[१] ।
नत्वा शिष्यप्रबोधाय लिख्यते **शब्दसञ्चयः** ॥१॥
[२]वृक्षादिसोमपादी वाऽग्न्यादिवातप्रमीमुखाः ।
शम्भ्वादिखलपूः पितृ-मुखाः से[३] रै[४]गोग्लौ[५] नरि[६] ॥२॥

तत्र प्रथममकारान्ताः ।
वृक्षदेवनरव्याघ्र-सिंहशार्दूलवायसाः ।
प्रासादलगुड[७]स्तम्भ-घटकुञ्जरनायकाः ॥१॥
चक्रवाकशरद्वीप-हंससारसवानराः ।
मेघनाविकमातङ्ग-मृगमीनतुरङ्गमाः ॥२॥
नृपकुम्भजनाः शूद्र-वैश्यक्षत्रियब्राह्मणाः ।
स्वर्गसूर्यग्रहाश्चन्द्र[८]-दैत्यव्यन्तरपन्नगाः ॥३॥
क्रोधमानमदा हर्ष-मोहलोभनखाकराः[९] ।
केशदेशनरेशाश्च महिषवृषभौ खराः[१०] ॥४॥
पट्टपादपधर्माश्च[११] कान्तकामजिना[१२] नयः ।
चूतभूतखञ्जरीट-[१३]चटकोन्दरशूकराः ॥५॥
कोलमर्कटमण्डूक-पारापतपितामहाः ।
एवमन्येऽप्यकारान्ताः शब्दाः पुंसि प्रकीर्तिताः ॥६॥

---

१. पाठान्तरम् - मुदा - C. ।
२. पा० देवहाहामुनिग्राम-णीसाधुखलपूमुखाः ।
पितृयुजृपत्लृक्लाद्याः सेरैगोग्लौरतो नरे ॥ - C.
३. सह इना वर्तते इति से-कामेन - A. ।
४. लक्ष्मीः - A. ।
५. चन्द्रः - A. ।
६. पुंलिङ्गे - A. ।
७. पा० लकुट० - C. ।
८. पा० ०न्द्रादित्य० - C. ।
९. पा० नखाः कराः - C. ।
१०. पा० खरः - C. ।
११. पा० त्रिदशद्युशयौ धर्म० - C. ।
१२. पा० ०जना नयः - C. ।
१३. पा० ०वटकोटम्बुर० - A.B. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा[१]-

[२]वृक्षः	[३]वृक्षौ	[४]वृक्षाः
[५]वृक्षम्	वृक्षौ	[६]वृक्षान्
[७]वृक्षेण	[८]वृक्षाभ्याम्	[९]वृक्षैः
[१०]वृक्षाय	वृक्षाभ्याम्	[११]वृक्षेभ्यः
[१२]वृक्षात्	वृक्षाभ्याम्	वृक्षेभ्यः
[१३]वृक्षस्य	[१४]वृक्षयोः	[१५]वृक्षाणाम्
[१६]वृक्षे	वृक्षयोः	[१७]वृक्षेषु
सं० हे वृक्ष[१८]	हे वृक्षौ	हे वृक्षाः

[१९]एवं देवादयोऽपि ज्ञातव्याः ।

[२०]अथाऽऽकारान्ताः ।

[२१]सोमपाः कीलालपाश्च विषर्खाः[२२] शङ्खध्माग्रेगौ[२३] ।

[२४]गोषाब्जेजावुदधिक्रा[२६] हाहाः[२५] पुंसि निवेदिताः ॥१॥

---

१. (प्रतौ वृक्षशब्दस्य रूपाणि न सन्ति, किन्तु तत्र देवशब्दस्य रूपाणि वर्तन्ते ।
२. रेफसोर्विसर्जनीयः [२-३-६३ कातन्त्रे] B.। ३. ओकारे औ औकारे च [१-२-९ का.] B.।
४. जसि [२-१-१५ का.] B.। ५. अकारे लोपम् [२-१-१९ का.] B.।
६. शसि सस्य च नः च [२-१-१६ का.] B.। ७. इन टा [२-१-२३ का.] B.।
८. अकारो दीर्घं [घोषवति १-२-९ का.] B.। ९. भिसैस् वा [२-१-१८ का.] B.।
१०. ङेर्यः [२-१-२४ का.] अकारो दीर्घं [घोषवति २-१-१४ का.] B.।
११. धुटि बहुत्वे त्वे [२-१-१९ का.] B.। १२. ङसिरात् [२-१-२१ का.] B.।
१३. ङस् स्य [२-१-२२ का.] B.। १४. ओसि च [२-१-२० का.] B.।
१५. आमि च नुः [२-१-७२ का.] अकारो दीर्घं [घोषवति २-१-१४ का.] B.।
१६. अवर्ण इ[वर्णे ए १-२-२ का.] B.।
१७. धुटि ब[हुत्वे त्वे २-१-१९ का.] नामिकरपरः [(३) प्रत्ययविकारागमस्थः सिः (४) षं नुविसर्जनीयषान्तरोऽपि २-४-४७ का.] B.।
१८. आमन्त्रणार्थाभिद्योतको हिशब्दः प्रागुपादीयते ।
ह्रस्वनदीश्र[द्भ्याः सिर्लोपम् २-१-७१ का.] B.।
१९. पा० एवं वृक्षादयोऽपि ज्ञेयाः C. ।
२०. अग्रेगा उदधिक्राश्च विषरवाश्च तथा गोषा(षाः) ।
श्रियं दधतु राजेन्द्र ! अब्जजासहिता इमे ॥ B. ।
२१. विप्रः A. । २२. शम्भुः A.B. । २३. अरुणः A. , इन्द्रः B. ।
२४. रविः A.B. । २५. ब्रह्मा A.B. । २६. हनुमान् A. , विष्णुः B. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमपाः[१]	सोमपौ[२]	सोमपाः
सोमपाम्	सोमपौ	सोमपः[३]
सोमपा	सोमपाभ्याम्	सोमपाभिः
सोमपे	सोमपाभ्याम्	सोमपाभ्यः
सोमपः	सोमपाभ्याम्	सोमपाभ्यः
सोमपः	सोमपोः	सोमपाम्
सोमपि	सोमपोः	सोमपासु
सं० हे सोमपाः	हे सोमपौ	हे सोमपाः

एवं कीलालपादयः सप्त ।

हाहाः[४]	हाहौ	हाहाः
हाहाम्	हाहौ	हाहः[५]
हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
हाहे	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
हाहः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
हाहः	हाहोः	हाहाम्
हाहि	हाहोः	हाहासु
सं० हे हाहाः	हे हाहौ	हे हाहाः

१. C. प्रतौ सोमपाशब्दस्य रूपाणि न सन्ति ।

२. सोमपाप्रभृतीनां शब्दानां स्वरे सन्धिकार्यमेव B. ।

३. लुगातोऽनापः [२-१-१०९ सिद्धहेमे] आलोपः । आ धातोरधुट्स्वरे [२-२-५५ का.] आ लोपः A. ।
अघुट्स्वरे तु आ धातोरघुट्स्वरे [२-२-५५ का.] इत्यन्तलोपः B. ।

४. अमरकोशे - हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम् ।
हाहाशब्दस्याऽधात्वाकारेऽपि अन्तलोपः ।
तथा चोक्तम्- प्रायोवृत्तिं समाश्रित्य धातोरिति खलूच्यते ।
आकारमेकं सन्त्यज्य सर्वस्याऽन्यस्य सङ्ग्रहः ॥
तथा च दीपके प्रोक्तम्- किं विस्त्र्या (?) तोऽन्य आकारो धातुबाह्योऽपि लुप्यते ।
स्वरे स्यादेरघुट्यग्रे क्त्वो यप् हाहेति तद्यथा ॥
समासे भार्विन्यनञः क्त्वो यप् [३-२-१५४ सि०] इति निर्देशात् ।

५. लुगातोऽनापः [२-१-१०७ सि.] इति सूत्रेणाऽऽकारलोपः C. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ इकारान्ताः ।

[1]अग्निरञ्जलिरम्भोधि-रंह्रियोनिर्मुनिर्ध्वनिः[2] ।
समाधिर्दुन्दुभिर्व्रीहि-रतिथिः सारथिर्गिरिः ॥१॥
[3]हरिः शौरिर्विरञ्चिश्च विधिररिः कपिः कविः ।
कुक्षिः सन्धिः कलिः शालि-[4]र्धृतिर्विमतिर्वृष्ल(ष्ण?)यः ॥२॥
[5]पाणिर्दीदिविर्व(व)ह्नी च घृणिर्ग्रन्थिरवी रविः ।
अद्रिः सेवधिरा[6]धिश्च व्याधिर्मणिरहिः कृमिः[7] ॥३॥
इषुधिर्जलधिश्चालि-र्भूपतिः श्रीपतिस्तिमिः ।
[8]शरधिर्वर्द्धि[9]रश्म्यादि-र्वा द्वयोऽमी इतो नरे ॥४॥

[10]अग्निः	अग्नी[11]	अग्नयः[12]
[13]अग्निम्	अग्नी	अग्नीन्[14]
[15]अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
[16]अग्नये	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः
[17]अग्नेः	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः

---

१. पा० मुनिः C. । २. पा० हरिः C. ।
३. पा० अग्निः C. । ४. पा० दृतिः C. ।
५. पा० पाणिदीदि० B., पाणिर्दीविविव० C. ।
६. पा० राधिसूर्याधि० A.B. । ७. पा० क्रमिः A.B. ।
८. भाथउ A. ।
९. पा० ०वर्द्धिरस्मादिर्वा A.B., ०वर्धकिरश्म्यादिर्वा C. ।
१०. C. प्रतौ अग्निशब्दस्य रूपाणि न सन्ति, किन्तु तत्र मुनिशब्दस्य रूपाणि वर्तन्ते ।
११. इदुतोऽस्त्रेरीदूत् [सि० १-४-२१] A., औकारः पूर्वम् [२-१-५१ का.] A.B. ।
१२. जस्येदोत् [सि० १-४-२२] A., इरेदुरोज्जसि [२-१-५५ का.] A.B. ।
१३. अग्नेरमोऽकारः [२-१-५० का.] A.B. ।
१४. शसोऽता सश्च नः पुंसि [सि० १-४-४९] दीर्घ A., शसोऽकारः सश्च नोऽस्त्रियाम् [२-१-५२ का.] A. । शसोऽकार सश्च नोऽस्त्रियाम्, [२-१-५२ का.] सस्य न, B.।
१५. टः पुंसिना [सि० १-४-२४] टा ना A., टा ना [२-१-५३] A.B. ।
१६. ङित्यदिति [सि० १-४-२३] A., ङे [२-१-५७ का.] इकार एकारः A. । ङे [२-१-५७ का.] B. ।
१७. ङसिङसोरलोपश्च [२-१-५८ का.] A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्नेः	अग्न्योः	अग्नीनाम्[१]
[२]अग्नौ	अग्न्योः	अग्निषु
सं० हे अग्ने !	हे अग्नी	हे अग्नयः

एवमङ्गल्यादयः ।

अथ ईकारान्ताः ।

[३]वातप्रमीः [४]पाथपपीः सेनानीः ग्रामणीस्तथा[५] ।
देवयजीः यवक्रीश्चाऽग्रणीरीतः (रेते) स्मृता नरे ॥

[६]वातप्रमीः	वातप्रम्यौ	वातप्रम्यः
[७]वातप्रमीम्	वातप्रम्यौ	वातप्रमीन्[८]
वातप्रम्या	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभिः
वातप्रम्ये	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
वातप्रम्यः	वातप्रमीभ्याम्	वातप्रमीभ्यः
वातप्रम्यः	वातप्रम्योः	वातप्रम्याम्
[९]वातप्रम्यि	वातप्रम्योः	वातप्रमीषु
सं०हे वातप्रमीः	हे वातप्रम्यौ	हे वातप्रम्यः

एवं पाथपपीः देवयजीः ।

---

१. ह्रस्वापश्च [सि० १-४-३२] आम् नाम्, दीर्घो नाम्यतिसृ-चतसृप्रः [सि० १-४-४७] A. । आमि च नुः [२-१-७२ का.] नुरागमः, दीर्घमामि सनौ [२-२-१५ का०] A. । आमि च नुः [२-१-७२ का.], दीर्घमामि सनौ [२-२-१५ का.] B.।

२. डिर्डौ [सि० १-४-२५] A. । ङिरौ सपूर्वः [२-१-६० का०] A.B.।

३. हिरणः A. । 'वातातिमुखगामुको मृग उच्यते' B. ।

४. वडवानलः A. । पा० पाथःपापीः C. । ५. पा० प्रधीः C. ।

६. मांक्-माने' ता वा तत्र प्र० वातं प्रमिमीते वातप्रमी A. ।

७. समानादमोऽतः [सि० १-४-४६] इति सूत्रेणाऽकारलोपः A.B. । समानादमोऽतः [सि० १-४-४६] C. ।

८. शसोऽता सश्च नः पुंसि [सि० १-४-४९] इति सूत्रेण शसोः अकारलोपः सकारसः नश्चेति A.B. । शसोऽता सश्च नः पुंसि [सि० १-४-४९] C. ।

९. पा० वातप्रमी A.B., टि० 'समानानां तेन दीर्घः [सि० १-२-१] A.B. । वातप्रमी । वातप्रमीसदृशानामनदीभ्यामीदूद्भ्याममृशसोरादिर्लोपः सस्य च नः । सप्तम्येकवचने समानः सवर्णे दीर्घ [र्घीभवति परश्च लोपम् १-२-१ का०] । अन्यत्र इवर्णो यम् [यमसवर्णे न च परो लोप्यः १-२-८] इत्यादिना सन्धिः B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेनानीः	सेनान्यौ[१]	सेनान्यः
[२]सेनान्यम्	सेनान्यौ	सेनान्यः
सेनान्या	सेनानीभ्याम्	सेनानीभिः
सेनान्ये	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
सेनान्यः	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
सेनान्यः	सेनान्योः	सेनान्याम्
[३]सेनान्याम्	सेनान्योः	सेनानीषु
सं० हे सेनानीः	हे सेनान्यौ	हे सेनान्यः

एवं प्रधीः । सप्तम्यां तु प्रध्यि प्रध्योः प्रधीषु ।

[४]यवक्रीः	[५]यवक्रियौ	यवक्रियः
यवक्रियम्	यवक्रियौ	यवक्रियः
यवक्रिया	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभिः
यवक्रिये	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
यवक्रियः	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
यवक्रियः	यवक्रियोः	यवक्रियाम्
यवक्रियि	यवक्रियोः	यवक्रीषु
सं०हे यवक्रीः	हे यवक्रियौ	हे यवक्रियः

एवं नी-सुधी-विमलधियः ।

[६]सुधीः	[७]सुधियौ	सुधियः
सुधियम्	सुधियौ	सुधियः

१. योऽनेकस्वरस्य [सि० २-१-५६] यत्त्वम् A. ।
२. एवं सेनानी अग्रणी ग्रामणी, परम् अम्-शस्-ङि विशेषः । सेनान्यं, सेनान्यः योऽनेक-स्वरस्य [सि० २-१-५६] यत्त्वम् । निय आम् [सि० १-४-५१] ङेराम् । एवं प्रधीः । सप्तम्यां तु प्रध्यि प्रधीषु । एवं यवक्री सुधी नी विमलधी इति पाठः C.प्रतौ अस्ति ।
३. निय आम् [सि० १-४-५१], नियो ङिराम् [२-१-७७ का.] A.।
४. C.प्रतौ यवक्रीशब्दस्य रूपाणि' न सन्ति ।
५. संयोगात् [सि० २-१-५२] A., ईदूतोरियुवौ स्वरे [२-२-५६ का.] इत्यादेशे A.। स्वरे सर्वत्र ईदूतोरियुवौ स्वरे [२-२-५६ का.] इत्यादेशे B. ।
६. A B प्रतौ सुधीशब्दस्य रूपाणि न सन्ति ।
७. धातोरिवर्णो [वर्णस्येयुव् स्वरे प्रत्यये सि० २-१-५०] इयादेशः C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
[सं० हे सुधीः]	[हे सुधियौ]	[हे सुधियः]

[१]यवक्री, संयोगात्, एवमन्येऽपि ।

अथ उकारान्ताः ।

[२]शम्भुर्विभुः प्रभुः स्थाणुः फेरुर्किंसारुकारवः ।
इक्षुभिक्षुहिमांश्चोतु- वायुगोमा[३]युमायवः ॥१॥

[४]साधुर्विभुरिपुन्यङ्कु-[५]वेणुरेणुहरेणवः ।
क्रतुः केतुस्तरुर्मेरु-र्जानुपीलुकृशानवः ॥२॥

भानुः स्वर्भानुः शङ्कुश्च शीतांशुर्गुग्गलुर्बटुः ।
हिङ्गुलुर्गुरुशत्रू च बाहुकम्बुरुतुम्बरुः[६] ॥३॥

तन्तुधात्वंसुसेत्विन्दु-र्वमथुर्वेपथुस्तथा ।
सूनुर्बिन्दुश्च दवथु-रुदन्ताः पुंसि कीर्तिताः ॥४॥

[७]शम्भुः	[८]शम्भू	शम्भवः[९]
[१०]शम्भुम्	शम्भू	शम्भून्

---

१. A.B. प्रतौ एष पाठः नास्ति । २. पा० साधुः C. ।
३. शृगालः A. । ४. शम्भुः C. ।
५. वेणु....करेणवः C. । ६. पा० तून्दरु A.B. ।
६. पा० तून्दरु ।
७. C. प्रतो साधुशब्दस्य रूपाणि न सन्ति ।)
८. इदुतोऽस्त्रेरीदूत् [सि० १-४-२१], औकारः पूर्वम् [२-१-५१ का०] A.। शम्भु-शब्दस्याऽग्निवत् प्रक्रिया B. ।
९. जस्येदोत् [सि० १-४-२२], इरेदुरोज्जसि [२-१-५५ का.] A. ।
१०. समानादमोऽतः [सि० १-४-४६] अकारलोपः A. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]शम्भुना	शम्भुभ्याम्	शम्भुभिः
[2]शम्भवे	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
[3]शम्भोः	शम्भुभ्याम्	शम्भुभ्यः
शम्भोः	शम्भ्वोः	शम्भूनाम्
शम्भौ	शम्भ्वोः	शम्भुषु
सं० हे शम्भो	हे शम्भू	हे शम्भवः

[4]अथ ऊकारान्ताः ।

[5]खलपूर्यवलूर्हूः नग्नहूः[6] कटप्रूः स्वयंभूः ।
प्रतिभूर्मनोभू .... रूदन्ताः पुंसि कीर्तिताः ॥

खलपूः	[7]खलप्वौ	खलप्वः
खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः
खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः
खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु
सं०हे खलपूः	हे खलप्वौ	हे खलप्वः

एवं यवलूः ।

---

१. टः पुंसिना [सि० १-४-२४] A. । २. ङे [२-१-५७ का.] उकार ओकार A. ।
३. ङसिङसोरलोपश्च [२-१-५८ का.] A. ।
४. C. प्रतौ एषः श्लोको नास्ति, किन्तु "लूर्हूः खलपूर्नग्नहूर्यवलूः कटप्रुवः" । एवं कटप्रू स्वयंभूप्रभृतयः - इति पाठोऽस्ति ।
५. सज्जनः A. ।
६. मद्यबीजम् A. ।
७. खलपूशब्दस्य धातूदन्तत्वाद् अनेकाक्षरयो [स्त्वसंयोगाद्यवौ २-२-५९ का.] इत्यादिना स्वरे वत्त्वम् B.।
'खलपूः स्याद् बहुकरः' B.।
स्यादौ वः [सि० २-१-५७] C.।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

[1]नग्नहूः	[2]नग्नह्वौ	नग्नह्वः
[3]नग्नहूम्	नग्नह्वौ	[4]नग्नहून्
नग्नह्वा	नग्नहूभ्याम्	नग्नहूभिः
नग्नह्वे	नग्नहूभ्याम्	नग्नहूभ्यः
नग्नह्वः	नग्नहूभ्याम्	नग्नहूभ्यः
नग्नह्वः	नग्नह्वोः	नग्नह्वाम्
नग्नहि्व	नग्नह्वोः	नग्नहूषु
सं० हे नग्नहूः	हे नग्नह्वौ	हे नग्नह्वः

एवं हूहूः ।

कटप्रूः	[5]कटप्रुवौ	कटप्रुवः
कटप्रुवम्	कटप्रुवौ	कटप्रुवः
कटप्रुवा	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभिः
कटप्रुवे	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
कटप्रुवः	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
कटप्रुवः	कटप्रुवोः	कटप्रुवाम्
कटप्रुवि	कटप्रुवोः	कटप्रूषु
सं०हे कटप्रूः	हे कटप्रुवौ	हे कटप्रुवः

एवं स्वयंभूप्रभृतयः ।

१. एवं नग्नहूः, हूहूः, परम् अम्-शस् विशेषः हूहूं हूहून् । अन्यानि रूपाणि न सन्ति C. ।
२. वमुवर्णः [१-२-९ का.] इति वत्वे A.B. ।
३. समानादमोऽतः [सि० १-४-४६] A. ।
४. पुंसीदूद्भ्यां सश्च न । पुंलिङ्गे इकारान्त उकारान्त परइ अम्-शस्तणा अकार लोप पामइ । अनइ सकार रहइ नकार हुइ A.B. ।
शसोऽता सश्च नः पुंसि ईदूद्भ्यामिति न स्याताम्, अनदीभ्यां नस्य च ।
"अकारो लोपतां याति सकारस्य नकारताम्" A.।
हूहू-नग्नहूप्रभृतीनाम् अनदीभ्याम् ईदूद्भ्याम् अम्-शसोरादिर्लोपः सस्य च नः । तथा नदीत्वास्पर्शाद् वमुवर्ण इति सन्धिः B.।
५. संयोगात् [सि. २-१-५२], ईदूतोरियुवौ स्वरे [२-२-५६ का.] उवादेशे A.। कटप्रूशब्दस्य संयोगपरत्वाद् वत्वं न । भ्रूशब्दस्यैकाक्षरत्वाद् वत्वं न प्राप्तम्, ईदूतोरियुवौ स्वरे [२-२-५६ का.] उवादेशे B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ऋकारान्ताः ।

पिता धाता[१] विधाता ना[२] नप्ता ध्येता तथोद्[३]गता ।
[४]स्रष्टा क्षत्ता च पोता च होता शास्ता ऋतो नरे ॥

[५]पिता	[६]पितरौ	पितरः
पितरम्	पितरौ	[७]पितॄन्
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
[८]पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पितुः	पित्रोः	[९]पितॄणाम्
[१०]पितरि	पित्रोः	पितृषु
सं० हे पितः[११]	हे पितरौ	हे पितरः
[१२]धाता	[१३]धातारौ	धातारः

१. पा० माता C. । २. पा० च A.B.। ३. पा० तथोता च A.B.।
४. पा० त्वष्टा क्षत्त्वा च A.B. । सृष्टा क्षप्ता च० C. ।
५. ऋदुशनस्-पुरुदंशोऽनेहसश्च [सेर्डाः सि० १-४-८४] A.। आ सौ सिलोपश्च [२-१-६४ का.] अन्त आ A.B.।
६. अर्डौ च [सि० १-४-३९] ऋकारान्तशब्द... घुटनिमित्त भूइ A.। घुटि च [२-१-६९ का.] तर् B.।
७. शसोऽता सश्च नः पुंसि [सि० १-४-४९], अग्निवच्छसि [२-१-६५ का०] A.। अग्निवच्छसि [२-१-६५ का०] इत्यग्निवद् भावात् शसो ऋकार ऋकार सस्य च नः, समान [न सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् १-२-१ का०] इति दीर्घः B.।
८. ऋतो डुर् [सि० १-४-३७] र्ङस्स्थाने उर्, ऋदन्तात् सपूर्वः [२-१-६३ का०] A.। ऋदन्तात् सपूर्वः [२-१-६३ का०] इति सह ङसिङसो ऋकारेण उत्वम् B.।
९. ह्रस्वापश्च [सि० १-४-३२] आम्स्थाने नाम्, दीर्घो नाम्यतिसृ-चतसृ-प्रः [सि० १-४-४७] A.। आमि च नुः [२-१-७२ का०] नुरागमः, दीर्घमामि सनौ [२-२-१५ का०] दीर्घः B.।
१०. अर्डौ [२-१-६६ का०] A.। अर्डौ [२-१-६६ का०] इति अर् B.।
११. आमन्त्रणे आ च न संबुद्धौ [२-१-७० का०] इति अर् B.।
१२. आ सौ सिलोपश्च [२-१-६४ का०] B.।
१३. धातोस्तृशब्दस्याऽर् [२-१-६८ का०] शेषं पितृवत् B.। तृ-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ [त्वष्टृ-क्षत्तृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्त्रो घुट्यार्] [सि० १-४-३८] धाता, धातारो, धातॄन् धात्रा० इति रूपाणि एव सन्ति C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धातरम्	धातारौ	धातॄन्
धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः
धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
धातरि	धात्रोः	धातृषु
सं०हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः

एवं विधातृप्रभृतयः ।

अथ [१]ॠकारान्ताः ।

युजृः	युज्रौ	युज्रः
युजृम्	युज्रौ	युजॄन्
युज्रा०	युजृषु	

एवं छिदृः भिदृः ।

अथ [२]ऌकारान्ताः ।

पत्लृः	पत्लौ	पत्लः
पत्लम्	पत्लौ	पत्लॄन्

एवं सर्वत्राऽपि । गम्लृ-घस्लृप्रमुखा अप्येवम् ।

अथ [३]ऌकारान्ताः ।

क्लृः	क्लौ	क्लः
पत्लृवत्		

अथ एकारान्ताः ।

[४]सेः	[५]सयौ	सयः
सयम्	सयौ	सयः
सया	सेभ्याम्	सेभिः

१.२.३. A.B. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

४. स इना कामेन वर्तते से । कामी स्मरः प्रिया वा । स विसर्गः B.।

५. स्वरे ' ए अय्' [१-२-१२] सयौ B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सये	सेभ्याम्	सेभ्यः
[१]सेः	सेभ्याम्	सेभ्यः
सेः	सयोः	सयाम्
सयि	सयोः	सेषु
सं०हे से	हे सयौ	हे सयः

अथ ऐकारान्ताः ।

[२]राः	[३]रायौ	रायः
रायम्	रायौ	रायः
राया	राभ्याम्	राभिः
राये	राभ्याम्	राभ्यः
रायः	राभ्याम्	राभ्यः
रायः	रायोः	रायाम्
रायि	रायोः	रासु
सं०हे राः	हे रायौ	हे रायः

अथ ओकारान्ताः

[४]गौः	गावौ	गावः
[५]गाम्	गावौ	[६]गाः
गवा	गोभ्याम्	गोभिः
गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः

१. एदोद्भ्यां चेति एकारान्त ओकारान्त सविहु शब्द परइ डसिर्ङस्तणा अकारनउ लोप हुइ । ... सह इना वर्तते इति सः, तस्मात्तस्य वा सेः । डसिङस् फक्किकायमकारलोपः A.। मतान्तरे एदोदन्तान् डसिङसोरलोपो वा स्यात् B.।

२. आ रायो व्यञ्जने [सि० २-१-५] एकारनइं आकार A.। रैशब्दो द्रव्यवाची । आत्वं व्यञ्जनादौ [२-३-१८ का०], विभक्तौ 'रैः' [२-३-१९ का०] इत्यात्वम्, सः विसर्गः B.।

३. ऐकारान्त सर्वत्र शब्द रहइं एदैतोऽयाय् [१-२-२३] पामइ, सूत्र हैमः A.। स्वरे 'ए अय्' [१-२-१२ का०] B.।

४. ओत औ [सि० १-४-७४] इति ओकारनइं गोरौ घुटि [२-२-३३ का०] औकारः A.। गोरौ घुटि [२-२-३३ का०] औ, सः विसर्गः B.।
दृग्दृष्टिदीधितिस्वर्ग-वज्रवाग्बाणवारिषु । भूमौ पशौ च गोशब्दो बिम्बनिर्देशसम्भृत ॥

५. अम्शसोरा [२-२-३४ का०] A.। अम्शसोरा [२-२-३४ का०] अन्त आ B.।

६. अम्शसोरा [२-२-३४ का०] अन्त आ B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
[२]गोः	गवोः	गवाम्
गवि	गवोः	गोषु
सं०हे गौः	हे गावौ	हे गावः

अथ औकारान्ताः ।

[३]ग्लौः	[४]ग्लावौ	ग्लावः
ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
ग्लावः	ग्लावो	ग्लावाम्
ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सं० हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

एवं स्वरान्ताः शब्दाः पुंलिङ्गाः समाप्ताः ।

★ ★ ★

अथ स्त्रीलिङ्गाः स्वरान्ताः शब्दाः कथ्यन्ते ।

[५]श्रद्धाद्या बुद्धिमुखाश्च नद्याद्या धेनुमुख्यकाः ।
वधूप्रभृतयो मातृ-मुख्या द्योनौः स्वराः स्त्रियाम् ॥१॥

तत्र प्रथममाकारान्ताः ।

[६]श्रद्धा माला शाला रम्भा भम्भा सुरा शिषा हेला ।
मनःशिला वामा [७]अजा आदन्ताः कीर्तिताः स्त्रियाम् ॥१॥

[८]श्रद्धा	[९]श्रद्धे	श्रद्धाः

१. गोश्च [२-१-५९ का०] डसिडसोरलोपः । एदोद्भ्यां डसिडसो रः [सि० १-४-३५] ।
२. गोश्च [२-१-५९ का०] अ इतिसूत्रेण लोपः B.।
३. ग्लौशब्दश्चन्द्रवाची, विसर्गः B.।
४. स्वरे 'औ आव्' [१-२-१४ का०] B.।
५. शालाद्या C.।
६. श्लोको नास्ति C.।
७. एषः पाठो नास्ति A.।
८. श्रद्धायाः सिर्लोपम् [२-१-३७ का०] A.B.। शालाशब्दस्य रूपाणि वर्तन्ते C.।
९. औता [१-४-२०] ईणइं आकार एकार हैम. A.। औरीम् [२-१-४१ का०] औई, अवर्ण इवर्णे ए [१-२-२ का०] A.। औरीम् [२-१-४१ का०] B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धाम्	श्रद्धे	श्रद्धाः
[१]श्रद्धया	श्रद्धाभ्याम्	श्रद्धाभिः
[२]श्रद्धायै	श्रद्धाभ्याम्	श्रद्धाभ्यः
श्रद्धायाः	श्रद्धाभ्याम्	श्रद्धाभ्यः
श्रद्धायाः	[३]श्रद्धयोः	[४]श्रद्धानाम्
श्रद्धायाम्	श्रद्धयोः	श्रद्धासु
[५]सं०हे श्रद्धे	हे श्रद्धे	हे श्रद्धाः

एवं [६]शाला-जाया-मालादयः ।

अथ इकारान्ताः ।

बुद्धिः शक्तिर्मतिर्धूलि[७]-र्वेणिनिः श्रेणिश्रेणयः ।
दुन्दुर्भिर्भूमिपाल्यालि-र्दविः कान्तिः [९]छविः कृषिः ॥१॥
[१०]सृणिरश्रिस्तडिर्नेमि-राजिर्[११]राटिवृतिर्वृत्तिः ।
मुखंढि [१२]दालिपङ्क्ती च रात्रिर्गति[१३]र्धृतिः[१४]स्तुतिः ॥२॥
[१५]ऋद्धिर्वृद्धिः स्मृतिर्गृष्टि-रजनिर्घृष्टिः[१६] सङ्गतिः ।
इकारान्ताः स्मृताः प्राज्ञैः स्त्रीलिङ्गाः पूर्वसूरिभिः ॥३॥

बुद्धिः [१७]बुद्धी [१८]बुद्धयः

---

१. टौसोरे [२-१-३८ का०] । टौस्येत् [सि० १-४-१९] C.।
२. आपो ङितां यै-यास्-यास्-याम् [सि० १-४-१७] A.।
ङ्वन्ति [यै यास् यास् याम् २-१-४२ का०] A.।
३. टौसोरे [२-१-३८ का०] A.।
४. ह्रस्वाऽऽपश्च [सि० १-४-३२] आम् नाम् A.। पा० श्रद्धाणाम् A.B.।
५. हैम-एदापः [१-४-४२] इणइ सू० आकारान्तस्त्रीलिङ्गशब्दरहइं आमं० आकार ए A.।
ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम् [२-१-७१ का०], संबुद्धौ च [२-१-३९ का०] एकार A.।
६. पा० श्रद्धामालादयः C.।
७. पा० धूलि-श्रेणिनिः श्रेणिवेणयः C.।
८. पा० भूमिपाल्याली-दिवि० C.।
९. पा० छविकृषिः A.B.।
१०. पा० शृणिरस्त्रिः A.B.।
११. पा० राटिर्धृति० A.B.।
१२. पा० दालिः पङ्क्ति च A.B.।
१३. पा० गतिधृति० C.।
१४. पा० धुटिस्त्रुटिः A.B.।
१५. पा० ऋद्धिवृद्धिः C.।
१६. पा० घृष्टिसङ्गतिः C.।
१७. इदुतोऽस्त्रेरीदूत् [सि० १-४-२१] ई A.। औकारः पूर्वम् [२-१-५१ का०] A.।
१८. जस्येदोत् [सि० १-४-२२] इकार एकार A.। इरेदुरोज्जसि [२-१-५५ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धिम्	बुद्धी	बुद्धीः
बुद्ध्या	बुद्धिभ्याम्	बुद्धिभिः
[१]बुद्ध्यै, बुद्धये	बुद्धिभ्याम्	बुद्धिभ्यः
बुद्ध्याः, बुद्धेः	बुद्धिभ्याम्	बुद्धिभ्यः
बुद्ध्याः, बुद्धेः	बुद्ध्योः	बुद्धीनाम्
बुद्ध्याम्, बुद्धौ[२]	बुद्ध्योः	बुद्धिषु
[३]सं० हे बुद्धे	हे बुद्धी	हे बुद्धयः

एवं शक्त्यादयोऽपि ।

अथ ईकारान्ताः ।

नदी नारी सखी नौली कदेली लवली मही ।
[६]भषी प्लवी कुमारी च नलिनी बिसिनी वनी ॥१॥

भामिनी कामिनी सौमी [८]मशी रीरी [९]पुरन्ध्र्यपि ।
वाणिनी मालिनी शूद्री हिमानी सरसी तथा ॥२॥

मातुलानी क्षत्रियाणी ब्राह्मणी सुन्दरी गौरी ।
उपाध्यायी [१०]शालिपर्णी मृडानी पार्वती कनी ॥३॥

[११]कादम्बिनी शमी काली मघोनी योगिनी तथा ।
विदुषी पेचुषी योक्ष्मी ईदन्ताः कीर्तिताः स्त्रियाम् ॥४॥

[१२]नदी	नद्यौ	नद्यः
नदीम्	नद्यौ	नदीः
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः

१. स्त्रिया ङितां वा दै-दास्-दास्-दाम् [सि० १-४-२८] A.। ह्रस्वश्च ङ्वति [२-२-५ का०] नदीवद्भावात्, नद्या ऐ आस् आस् आम् [२-१-४५ का०] A.। ङ्वन्ति [यै यास् यास् याम् २-१-४२ का०] A.।
२. ङिरौ सपूर्वः [२-१-६० का०] A.।
३. संबुद्धौ च [२-१-५६ का०] A.।
४. पा० प्लवी A.B.।
५. पा० नली कदली लवली A.B.।
६. पा० मही भषी A.B.।
७. पा० बिशिनी A.B., बिशनी C.।
८. पा० मसी A.।
९. पा० पुरन्दरी A.B.।
१०. पा० शालपर्णी A.B.।
११. एषः श्लोको नास्ति C.।
१२. दीर्घङ्याब् [व्यञ्जनात् सेः, सि० १-४-४५] A.। ईकारान्तात् सिः [२-१-४८ का०] सि लोपम् A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
नद्याम्	नद्योः	नदीषु
[२]सं०हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

एवं नारीमुख्याः ।

अथ उकारान्ताः ।

धेनुस्तनुरुडुःस्नायुः [३]सरयुर्द[४]द्रुरित्यपि ।
[५]कर्णाम्बुः स्वम्बुरज्जू च उदन्ताः कथिताः स्त्रियाम् ।

धेनुः	[६]धेनू	[७]धेनवः
धेनुम्	धेनू	धेनूः
[८]धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
[९]धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
धेन्वाः, धेनोः	[१०]धेन्वोः	धेनूनाम्
धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सं०हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

एवं तनुप्रभृतयः ।

---

१. नद्या ऐ आस् आस् आम् [२-१-४५ का०] A.।
२. ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम् [२-१-७१ का०], संबुद्धौ ह्रस्वः [२-१-४६ का०] A.।
३. पा० सरसु० C.।
४. दर्दु० A.। ददु० B.।
५. कर्णाम्बुश्वम्बु० A.B.। कर्णाम्बुस्वम्बु० C.।
६. औकारः पूर्वम् [२-१-५१ का०] A.।
७. उ ओत् A.।
८. वमुवर्णः [१-२-९ का०] A.।
९. ह्रस्वश्च ङवति [२-२-५ का०] नदीवद्भावात्, नद्या ऐ आस् आस् आम् [२-१-४५ का०] ऐ आस् आस् आम् आदेशः A.।
१०. वमुवर्णः [१-२-९ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ ऊकारान्ताः ।

वधूर्दम्भूश्शंभूः[1] श्वस्रू-[2]रलाबूर्दधिषूः कुहूः ।
कपिकच्छूः कसेरूश्च वामोरूः सरयूरपि ॥१॥
[3]कद्रूः कण्डूः करभोरूः कर्कन्धूश्च कमण्डलूः ।
संहितोरूः सहितोरूः सफोरूः कथिताः स्त्रियाम् ॥२॥

वधूः	वध्वौ	वध्वः
[4]वधूम्	वध्वौ	वधूः
वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
[5]वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सं०हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

एवं दम्भूप्रभृतयः ।

अथ ऋकारान्ताः ।

[6]माता पितृष्वसा याता दुहिता मातृष्वसा तथा ।
ननान्दा च स्वसा प्राज्ञैः शब्दाः प्रोक्ता ह्यमी ऋताः ॥१॥

[7]माता	[8]मातरौ	मातरः
मातरम्	मातरौ	[9]मातृः

१. पा० शुमूः स्वसू० A.B.।
२. पा० ०दलाबूः दधिषूः कहूः A.B., ०रलाबूद० C.।
३. कण्डूः करभोरूः कर्कन्धूश्च कमण्डलूः ।
सहितोरूः संहितोरूः सिंहितोरूः सिफोरूः कथिता स्त्रियाम् ॥ A.B.।
कण्डू कण्डू करभोरू कर्केन्धू च कमण्डलू ।
संहितोरू सहितोरू शिफरू० C.।
४. समानादमोऽतः [सि० १-४-४६] अकारलोप A.।
५. नद्या ऐ आस् आस् आम् [२-१-४५ का०] ऐ, आस्, आस्, आम् आदेशः A.।
६. मातृपि० A.B.।
७. ऋदुशनस्-पुरुदंशो ऽनेहसश्च सेर्डोः [सि० १-४-८४] सि डा, डित्यन्त्यस्वरादे [सि० २-१-११४] A.।
८. अर्डौ च [सि० १-४-३९] अर् A.। ९. शसोऽता० [सि० १-४-४९] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
[२]मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
मातुः	मात्रोः	[३]मातृणाम्
[४]मातरि	मात्रोः	मातृषु
सं०हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

एवं यातृ-दुहितृ-ननान्दरः ।

स्वसा	[५]स्वसारौ	स्वसारः
स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसृः
[६]स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभिः
स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
[७]स्वसुः	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्यः
स्वसुः	स्वस्रोः	स्वसृणाम्
स्वसरि	स्वस्रोः	स्वसृषु
सं०हे स्वसः	हे स्वसारौ	हे स्वसारः

एवं पितृष्वसृ-मातृष्वसृशब्दाः ।

अथ ओकारान्ताः

[८]द्यौः	द्यावौ	द्यावः
[९]द्याम्	द्यावौ	[१०]द्याः

१. रमृवर्णः [१-२-१० का०] A.B.।

२. ऋतो डुर् [सि० १-४-३७] A.। ऋदन्तात् सपूर्वः [२-१-६३ का०] A.।

३. आम् नाम्, दीर्घो नाम्य [तिसृ-चतसृ-प्रः [सि० १-४-४७] A.।

४. अर्डौ [२-१-६६ का०] A.।

५. तृ-स्वसृ-नसृ-नेष्टृ-त्वष्टृ-क्षतृ-होतृ-[पोतृ-प्रशास्त्रो घुट्यार्, सि० १-४-३८] इणइ ऋतो आर् A.। स्वस्रादीनां च [२-१-६९ का०] इत्यार् आदेशे A.B.।
तृ-स्वसृ० इत्यार्-स्वसा, स्वसारौ, स्वसारः, स्वसारम्, स्वसारौ शेषं मातृवत् C.।

६. रमृवर्णः [१-२-१० का०] A.। ७. ऋतो डुर् [सि० १-४-३७] A.।

८. द्यौ शब्दो गोशब्द-ओकारान्तोपलक्षणम् । तेन द्योशब्देऽपि गौरो घुटि [२-२-३३ का०], इत्यादिनि सूत्राणि प्रवर्तन्ते A.B.। अथ ओकारान्ताः शब्दाः गोशब्दवत्; प्रथमायाः सर्वाणि द्वितीयाया एकवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

९. आ अम्-शसोऽता [सि० १-४-७५] ईणइ आकार A.। १०. पा० द्यावः B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्यवा	द्योभ्याम्	द्योभिः
द्यवे	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
द्योः	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
द्योः	द्यवोः	द्यवाम्
द्यवि	द्यवोः	द्योषु
सं० हे द्यौः	हे द्यावौ	हे द्यावः

अथ औकारान्ताः ।

[1]नौः	नावौ	नावः
नावम्	नावौ	नावः
नावा	नौभ्याम्	नौभिः
नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
नावः	नावोः	नावाम्
नावि	नावोः	नौषु
सं०हे नौः	हे नावौ	हे नावः

[2]एवं स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दाः समाप्ताः ।

★ ★ ★

[अथ नपुंसकाः स्वरान्ताः शब्दाः कथ्यन्ते ।]

वनाद्या वारिमुख्याश्च जत्वाद्याः [3]स्युर्नपुंसकाः ।
ह्रस्वान्ताः कथिताः शब्दा न दीर्घान्ता भवन्ति हि ॥१॥

अथ प्रथममकारान्ताः ।

वनं सौधं किरीटं च धान्यं कुण्डं घृतं तृणम् ।
ऋणं शृङ्गं बलं पद्मं सत्यं [4]षण्ढे प्रकीर्तिताः ॥१॥

---

१. प्रथमाया द्वितीयायाश्च सर्वाणि तथा तृतीयाया एकवचनस्य रूपाणि सन्ति, ग्लौवत् A.B.।
२. पा० एवं स्वरान्ताः स्त्रियाम् C.। ३. पा० किल A.B.।
४. पा० खंढे A.B., C. ष(षं)ढे , नपुंसके [इत्यर्थः] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]वनम्	[2]वने	[3]वनानि
वनम्	वने	वनानि
[4]वनेन०		शेषं पुंलिङ्गे वृक्षवत् ।

एवं सौधादयः ।

अथ इकारान्ताः ।

[5]वार्यस्थिदधिस[6]क्थीनि सुपथिसु[7]सखी तथा ।
अक्षिप्रभृतयः शब्दा इति [8]षण्ढे निवेदिताः ॥१॥

वारि	[9]वारिणी	वारीणि
वारि	वारिणी	वारीणि
वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
वारिणि	वारिणोः	वारिषु
[10]सं० हे वारे,वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

[11]एवं सुपथि-सुसखी ।

अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि
[12]अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः

---

१. अकारादसंबुद्धौ मुश्च [२-२-७ का०] स्यम्लोपे मुरागम A.।
२. औरीम् [२-२-२९ का०] A.।
३. जस्शसोः शिः [२-२-१० का०] जस्स्थाने इ, धुट्स्वराद् घुटि नुः [२-२-११ का०], घुटि चाऽसंबुद्धौ [२-२-१७ का०] A.।
४. A.B. प्रतौ नास्ति ।
५. पा० वर्य० C.।
६. पा० सक्तीनि A.B.।
७. पा० सुसुखी A.B.।
८. पा० खण्ढे A.B.।
९. औरीम् [२-२-९ का०] औ ई, नामिनः स्वरे [२-२-१२ का०] नुरागमः A.।
१०. नामिनो लुग्वा [सि० १-४-६१] ।
११. पा० सुसखि-सुपथी C.।
१२. अस्थिदधिसक्थ्यमन्नतष्टादौ [२-२-१३ का०] इति अनादेशे A.B., अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णा० [२-२-१३ का०] अन्तस्य अन् A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्थ्ने	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
अस्थ्नः	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
अस्थ्नः	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्
अस्थ्नि, अस्थिनि	अस्थ्नोः	अस्थिषु
सं०हे अस्थि,अस्थे	हे अस्थिनी	हे अस्थीनि

एवं दध्यादयः त्रयः ।

अथ उकारान्ताः ।

जत्वम्बुमधुवस्तूनि [1]जानुमस्त्रुत्रपूणि च ।
अश्रुश्मश्रुकसेरूणि जतु[तु]म्बुरु षण्ढके(?) ॥१॥

जतु	[3]जतुनी	जतूनि
जतु	जतुनी	जतूनि
जतुना	जतुभ्याम्	जतुभिः
जतुने	जतुभ्याम्	जतुभ्यः
जतुनः	जतुभ्याम्	जतुभ्यः
जतुनः	जतुनोः	जतूनाम्
जतुनि	जतुनोः	जतुषु
सं०हे जतो,जतु	हे जतुनी	हे जतूनि

एवमम्बुप्रभृतयः । इति स्वरान्ताः शब्दा नपुंसकाः ।

★

अथ व्यञ्जनान्ताः प्रारभ्यन्ते ।

तत्र प्रथमं पुंलिङ्गाः ।

[4]चित्रलिखम्बुमुक् शब्द-प्राट् [5]भूभुक्सुर्गणौ तथा ।
मरुच्च बलिभिद् ज्ञान-भुद् [7]राजविदभौ तथा ॥१॥

विडुशनसौ मधुलिट् दामलिट् [8]काष्ठतट् तथा ।
व्यञ्जनान्ताः स्मृताः पुंसि बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥२॥

---

१. पा० वावु A.B.। २. पा० स्मश्रु A.B.C.।
३. अनाम्स्वरे नोऽन्तः [सि० १-४-६४] A.। ४. पा० चित्रलिङ्गम्बुमुक् A.B.C.।
५. पा० भूभृक् A.B.। ६. पा० सगुणौ A.B.।
७. पा० राजविदुभौ C.। ८. पा० काष्टतट् A.B.C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ खान्तः ।

[1]चित्रलिक्, चित्रलिग्	चित्रलिखौ	चित्रलिखः
चित्रलिखम्	चित्रलिखौ	चित्रलिखः
चित्रलिखा	चित्रलिग्भ्याम्	चित्रलिग्भिः
चित्रलिखे	चित्रलिग्भ्याम्	चित्रलिग्भ्यः
चित्रलिखः	चित्रलिग्भ्याम्	चित्रलिग्भ्यः
चित्रलिखः	चित्रलिखोः	चित्रलिखाम्
चित्रलिखि	चित्रलिखोः	चित्रलिक्षु
सं०हे चित्रलिक्,चित्रलिग्	हे चित्रलिखौ	हे चित्रलिखः

अथ चान्तः ।

अम्बुमुक्,अम्बुमुग्[2]	अम्बुमुचौ	अम्बुमुचः
अम्बुमुचम्	अम्बुमुचौ	अम्बुमुचः
अम्बुमुचा	अम्बुमुग्भ्याम्	अम्बुमुग्भिः
अम्बुमुचे	अम्बुमुग्भ्याम्	अम्बुमुग्भ्यः
अम्बुमुचः	अम्बुमुग्भ्याम्	अम्बुमुग्भ्यः
अम्बुमुचः	अम्बुमुचोः	अम्बुमुचाम्
अम्बुमुचि	अम्बुमुचोः	अम्बुमुक्षु
सं०हे अम्बुमुक्,अम्बुमुग्	हे अम्बुमुचौ	हे अम्बुमुचः

एवं पयोमुच् ।

क्रुञ्चशब्दः ।

[3]क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः

सप्तम्यां तु क्रुङ्क्षु, क्रुङ्सु

अथ छान्तः ।

[4]शब्दप्राड्, शब्दप्रात्	शब्दप्राछौ	शब्दप्राछः

१. अघोषे प्रथमोऽशिटः [सि० १-३-५०] ख् क् A.।

२. चजः कगम् [सि० २-१-८६] चकार क्, विरामे वा [सि० १-३-५१] A.। प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य सन्ति C.।

३. युजञ्चक्रुञ्चो नो ङः [सि० २-१-७१] A.।

४. यज-सृज-मृज-राज-भ्राज-भ्रस्ज-व्रश्च-परिव्राजः शः षः [सि० २-१-८७] छ् ष्, । हशषछान्तेजादीनां ङः [२-३-४६ का०] छ् ड्, वा विरामे [२-३-६२ का०] ङस्य ट् A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दप्राछम्	शब्दप्राछौ	शब्दप्राछः
शब्दप्राछा	शब्दप्राड्भ्याम्	शब्दप्राड्भिः
शब्दप्राछे	शब्दप्राड्भ्याम्	शब्दप्राड्भ्यः
शब्दप्राछः	शब्दप्राड्भ्याम्	शब्दप्राड्भ्यः
शब्दप्राछः	शब्दप्राछोः	शब्दप्राछाम्
शब्दप्राछि	शब्दप्राछोः	शब्दप्राड्सु
सं०हे शब्दप्राड्,शब्दप्राट्	हे शब्दप्राछौ	हे शब्दप्राछः

[1]एवं पथिप्राछ्प्रभृतयः ।

अथ जान्तः ।

[2]भूभुक्, भूभुग्	भूभुजौ	भूभुजः
भूभुजम्	भूभुजौ	भूभुजः
भूभुजा	भूभुग्भ्याम्	भूभुग्भिः
भूभुजे	भूभुग्भ्याम्	भूभुग्भ्यः
भूभुजः	भूभुग्भ्याम्	भूभुग्भ्यः
भूभुजः	भूभुजोः	भूभुजाम्
भूभुजि	भूभुजोः	भूभुक्षु
सं०हे भूभुग्,भूभुक्	हे भूभुजौ	हे भूभुजः

एवं हुतभुज्, बलिभुज्, वणिज्, भिषज्, परिव्राज्, देवेज्, रज्जुसृज्, कंसपरिमृज्, धा[3]नाभृज्ज्, [4]मूलवृश्च, [5]बि(वि)भ्राज्, [6]सम्राज्प्रभृतयः ।

अत णान्तः ।

[7]सुगण्	सुगणौ	सुगणः
सुगणम्	सुगणौ	सुगणः

१. पा० एवं पथिप्राछः A.B.।

२. प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति । C.।

३. पा० धानाभृज् A.B. धानाभृट् C.।

४. पा० मूलवृज् A.B. मूलवृट् C.।

५.६. एतौ द्वौ शब्दो न स्तः A.B.।

७. प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः एकवचनयोः, तृतीयायाः द्विवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगणा	सुगण्भ्याम्	सुगण्भिः
सुगणे	सुगण्भ्याम्	सुगण्भ्यः
सुगणः	सुगण्भ्याम्	सुगण्भ्यः
सुगणः	सुगणोः	सुगणाम्
सुगणि	सुगणोः	[१]सुगण्सु
सं०हे सुगण्	हे सुगणौ	हे सुगणः

एवमन्येऽपि णान्ताः ।

अथ तान्तः ।

मरुत्, मरुद्[२]	मरुतौ	मरुतः
मरुतम्	मरुतौ	मरुतः
मरुता	मरुद्भ्याम्	मरुदिभः
मरुते	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
मरुतः	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
मरुतः	मरुतोः	मरुताम्
मरुति	मरुतोः	३मरुत्सु
सं० हे मरुत्, मरद्	हे मरुतौ	हे मरुतः

एवं गरुत्, हरित्, अग्निचित्, विपश्चित्, [४]सामसुत्प्रभृतयः ।

अथ दान्तः ।

[५]बलिभित्, बलिभिद्	बलिभिदौ	बलिभिदः
बलिभिदम्	बलिभिदौ	बलिभिदः
बलिभिदा	बलिभिद्भ्याम्	बलिभिद्भिः
बलिभिदे	बलिभिद्भ्याम्	बलिभिद्भ्यः
बलिभिदः	बलिभिद्भ्याम्	बलिभिद्भ्यः

१. पा० सुगण्ट्सु, ङ्णोः कटावन्तौ शिटि नवा [सि० १-३-१७] C.।

२. धुटां तृतीयः [२-३-६० का०] तस्य द्, वा विरामे [२-३-६२ का०] द् त् A.। प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

३. मरुत्सु, मरुथ्सु, शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा [सि० १-३-५९] C.।

४. पा० सोमसुत् A.B.।

५. प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः एकवचनस्य, तृतीयायाः द्विवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलिभिदः	बलिभिदोः	बलिभिदाम्
बलिभिदि	बलिभिदोः	बलिभित्सु
सं० हे बलिभित्,बलिभिद्	हे बलिभिदौ	हे बलिभिदः

एवं विविषद्, द्युसद्, सभासद्, सुहृद्, सर्वविद्, वेदविद्, ज्ञानवित्प्रभृतयः ।

अथ धान्तः ।

[1]ज्ञानभुत्, ज्ञानभुद्	ज्ञानबुधौ	ज्ञानबुधः
ज्ञानबुधम्	ज्ञानबुधौ	ज्ञानबुधः
ज्ञानबुधा	ज्ञानभुद्भ्याम्	ज्ञानभुद्भिः
ज्ञानबुधे	ज्ञानभुद्भ्याम्	ज्ञानभुद्भ्यः
ज्ञानबुधः	ज्ञानभुद्भ्याम्	ज्ञानभुद्भ्यः
ज्ञानबुधः	ज्ञानबुधोः	ज्ञानबुधाम्
ज्ञानबुधि	ज्ञानबुधोः	ज्ञानभुत्सु
सं०हे ज्ञानभुत्,ज्ञानभुद्	हे ज्ञानबुधौ	हे ज्ञानबुधः

[2]एवं-

[3]विक्रुत्, विक्रुद्	विक्रुधौ	विक्रुधः
विक्रुधम्	विक्रुधौ	विक्रुधः
विक्रुधा	विक्रुद्भ्याम्	विक्रुद्भिः
विक्रुधे	विक्रुद्भ्याम्	विक्रुद्भ्यः
विक्रुधः	विक्रुद्भ्याम्	विक्रुद्भ्यः
विक्रुधः	विक्रुधोः	विक्रुधाम्
विक्रुधि	विक्रुधोः	विक्रुत्सु
सं०हे विक्रुत्, विक्रुद्	हे विक्रुधौ	हे विक्रुधः

१. ईणइं सूत्रिइं गडदबादेश्चतुर्थान्तस्यैकस्वरस्याऽऽदेश्चतुर्थः [स्ध्वोश्च प्रत्यये सि० २-१-७७] बकार भ् A.। हचतुर्थान्तस्य धातोस्तृतीयादेरादि [चतुर्थत्वमकृतवत् २-३-५० का०] A.। प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

२. पा० तथाऽपि A.B.।

३. धुटां तृतीयः [२-३-६० का०] ईणइं सूत्रिइं ध् द्, वा विरामे [२-३-६२ का०] द् त् A.। प्रथमायाः सर्वाणि तथा द्वितीयायाः एकवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं क्रुध्, मर्माविध्, [१]मृगाविध्, [२]श्वाविध्प्रभृतयः ।

अथ नान्तः ।

[३]राजा	राजानौ	राजानः
राजानम्	राजानौ	[४]राज्ञः
राज्ञा	[५]राजभ्याम्	राजभिः
राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
[६]राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
[७]सं०हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

एवं तक्षन्, उक्षन्, [८]प्रतिदिवन्, प्रथिमन्, [९]मदिमन्, [१०]तुशिमन्, [११]भूशिमन्, अणिमन्, महिमन्, लघिमन्, गरिमन्, [१२]क्रशिमन् [१३]प्रशमिन् प्रभृतयः ।

तथा–

श्वा[१४]	श्वानौ	श्वानः
श्वानम्	श्वानौ	[१५]शुनः
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः

---

१. पा० मृगविध् C.। २. A.B. प्रतौ नास्ति ।

३. नि दीर्घः [सि० १-४-८५] ईणइं सूत्रिइं दीर्घ A.। घुटि चासंबुद्धौ [२-२-१७ का०] दीर्घ A.।

४. अवमसंयोगादनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ [२-२-५३ का०] A.।

५. नसंयोगान्तावलुप्तवच्च पूर्वविधौ [२-३-५८ का०] A.।

६. ईङ्योर्वा [२-२-५४ का०] A.। ७. न संबुद्धौ [२-३-५७ का०] A.।

८. पा० प्रतिदीवन् A.B.। ९. पा० मृदिमन् A.B.।

१०-११. C. प्रतौ नास्ति । १२-१३. A.B. प्रतौ नास्ति ।

१४. घुटि चाऽसंबुद्धौ [२-२-१७ का०] दीर्घ A. ।

१५. श्वयुवमघोना च [२-२-४७ का०] एह शब्दरइं ईणए वकारनइं उकार हुइं A.। श्वन्-युवन् मघोनो डी-स्याद्यघुट्स्वरे व उः [सि० २-१-१०६] C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुनः	शुनोः	शुनाम्
शुनि	शुनोः	श्वसु
सं०हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः

शुनीशब्दो नदीवत् ।

युवन्शब्दः श्वन्वत् । स्त्रियां तु 'यूनस्तिः' इति 'ति' प्रत्यये युवतिर्बुद्धिवत्।[१] [२]मघवन्शब्दः श्वन्वत् । पक्षे सौ च मघवान् मघवा वा [२-२-२३ का०] इति मघवन्त्-आदेशे कृते-

[३]मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः
मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः
मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवदिभः
मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
मघवति	मघवतोः	मघवत्सु
सं० हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्तः

[४]मघवा	मघवानौ	मघवानः
मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
मघोनि	मघोनोः	मघवत्सु

१. पा० स्त्रियां यूनस्तिः प्रत्यये युवति बुद्धिवत् A.B.।

२. C. प्रतौ 'मघवन्.... कृते' एषः पाठो नास्ति ।

३. अभ्वादेरत्वसः सौ [सि० १-४-९०] A. । अन्त्वसन्तस्य चाधातोः सौ [२-२-२० का०] सौ दीर्घ A । प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एक द्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति C.।

४. A.B. प्रतौ एतानि सर्वाणि रूपाणि न सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं०हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

एवं भवन्त्-भगवन्त्-[१]महन्त्-अघवन्त्-गोमन्त्-विद्युत्वन्त्-लक्ष्मीवन्त्-[३]अर्थवन्त् शब्दा मघवन्त्वत् ।

स्त्रियां तु मघोनी मघवती । सर्वेऽपि सम्भवत ईप्रत्ययान्ता नदीवत् ।

तथा-

[७]दण्डी	दण्डिनौ	दण्डिनः
दण्डिनम्	दण्डिनौ	दण्डिनः
दण्डिना	दण्डिभ्याम्	दण्डिभिः
दण्डिने	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
दण्डिनः	दण्डिभ्याम्	दण्डिभ्यः
दण्डिनः	दण्डिनोः	दण्डिनाम्
दण्डिनि	दण्डिनोः	दण्डिषु
सं० हे दण्डिन्	हे दण्डिनौ	हे दण्डिनः

एवं मायिन्-मायाविन्-मनस्विन्-मनीषिन्-[८]गुणिन्-[९]वचस्विन्शब्दा [१०]दण्डिन्वत् ।

तथा-

[११]वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	[१२]वृत्रघ्नः
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः

१.२.४ C. प्रतौ नास्ति । ३. A.B. प्रतौ नास्ति ।

५. श्वन्-युवन्-मघोनो ङी-स्याद्यघुट्स्वरे वउः [सि० २-१-१०६] A.।

६. C. प्रतौ नास्ति ।

७. इन्-हन्-पूषाऽर्यम्णः शिस्योः [सि० १-४-८७] दीर्घ A.।

८.९. A.B. प्रतौ नास्ति । १०. C. प्रतौ नास्ति ।

११. इन्हन् [पूषार्यम्णां शौ च २-२-२१ का०] A.B.। इन्-हन्-पूषाऽर्यम्णः शिस्योः [सि० १-४-८७] अनेन C., C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयाया एव रूपाणि सन्ति ।

१२. अनोऽस्य [सि० २-१-१०८] अकार लोप, हनो हनो घ्न् [सि० २-१-११२] हन्स्थाने घ्न A. । अवमसंयोगाद [नोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ २-२-५३ का०] इति अकार लोपे 'हनेर्हेर्धिरुपधालोपे [२-२-३२ का०] A. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
वृत्रघ्नि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सं०हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः

एवं [1]भ्रूहन्-मित्रहन्-रिपुहन्-भ्रूणहन्[2]-ब्रह्महन्[3]प्रभृतयः ।

अहि वहि प्लहि गतौ, प्लिह प्लिहात् प्लीहा प्लिहेरिन्दीर्घश्च अन् दीर्घत्वे प्लीहन् निष्पन्नं पश्चात् हनेर्हेष्वकारो भवति ।

प्लीहा	प्लीहानौ	प्लीहानः
प्लीहानम्	प्लीहानौ	प्लीह्नः
प्लीह्ना	[4]प्लीहभ्याम्० इत्यादि ।	

तथा-

[5]पूषा	पूषणौ	पूषणः
पूषणम्	पूषणौ	[6]पूष्णः
पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभिः
पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
पूष्णः	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
पूष्णः	पूष्णोः	पूष्णाम्
पूष्णि, [7]पूषणि	पूष्णोः	पूषसु
सं०हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषणः

एवमर्यमन्-[8]सूर्यमन् ।

धुटां प्राग्नोन्त् आदेशे-

[10]अर्वा	[11]अर्वन्तौ	अर्वन्तः

१. C. प्रतौ नास्ति । २-३. A.B. प्रतौ नास्ति ।

४. एतद् रूपं नास्ति C.।

५. इनहन्पूषार्यम्णां शौ च [२-२-२१ का०] दीर्घ A.B., इन्-हन्-पूषार्यम्णः [सि० १-४-८७] एतेन C.। ६. अनोऽस्य [सि० २-१-१०८] अकार लोप A.।

७. पा० पूषनि A.B.। ८-९. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

१०. अभ्वादेरत्वसः सौ [सि० १-४-९०] ईणइ सूत्रिइ दीर्घ A.। C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति, तत्र अर्वत्सु, अर्वथ्सु-शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा [सि० १-३-५९] ।

११. अर्वन्नर्वन्तिरसावनञ् [२-३-२२ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वतः
अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः
अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
अर्वतः	अर्वतोः	अर्वताम्
अर्वति	अर्वतोः	अर्वत्सु
सं०हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्तः

अथ भान्तः ।

[1]विधप्, विधब्	विदभौ	विदभः
विदभम्	विदभौ	विदभः
विदभा	विधब्भ्याम्	विधब्भिः
विदभे	विधब्भ्याम्	विधब्भ्यः
विदभः	विधब्भ्याम्	विधब्भ्यः
विदभः	विदभोः	विदभाम्
विदभि	विदभोः	विधप्सु
सं०हे विधप्,विधब्	हे विदभौ	हे विदभः

एवं गर्दभप्रभृतयः ।

अथ मान्तः ।

[2]प्रशान्	[3]प्रशामौ	प्रशामः
प्रशामम्	प्रशामौ	प्रशामः
प्रशामा	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भिः
प्रशामे	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः
प्रशामः	प्रशान्भ्याम्	प्रशान्भ्यः

१. गडदबादे [श्चतुर्थान्तस्यैकस्वरस्याऽऽदेश्चतुर्थः स्ध्वोश्च प्रत्यये सि० २-१-७७] ईणइं सूत्रिइं द् ध्, धुटस्तृतीयः [सि० २-१-७६] भ् ब्, विरामे वा [सि० १-३-५१] ब् प् A.। गडदबादेश्चतुर्थान्त० C.।

२. मो नो म्वोश्च [सि० २-१-६७] मकार नकार A.। मो नो म्वोश्च [सि० २-१-६७] C., C प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एक द्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

३. स्वरे धातुरन् इति मा वत्त्वम् A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशामः	प्रशामोः	प्रशामाम्
प्रशामि	प्रशामोः	प्रशान्सु
सं०हे प्रशान्	हे प्रशामौ	हे प्रशामः

अथ शान्तः ।

[1]विट्, विड्	विशौ	विशः
विशम्	विशौ	विशः
विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
विशः	विशोः	विशाम्
विशि	विशोः	[2]विट्सु
सं०हे विट्, विड्	हे विशौ	हे विशः

एवं शब्दप्राश्-[3]पथिप्राश् ।

[4]अथ षान्तः ।

द्विट्, द्विड् द्विषौ० द्विड्भ्याम्० विट्वत् ।

अथ सान्तः ।

[5]उशना	उशनसौ	उशनसः
उशनसम्	उशनसौ	उशनसः
उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः

---

१. यज-सृज-मृज-राज-भ्राज-भ्रस्ज-व्रश्च [परिव्राजः शः षः, सि० २-१-८७] अनेन श् ष्, धुटस्तृतीयः [सि० २-१-७६] षकार ड्, वि [रामे वा सि० १-३-५१] ड् ट् A.। हशषछान्तेजादीनां डः [२-३-४६ का०] डकार, A.। C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. विड्सु, विड्त्सु, ड्नः सः त्सोऽश्वः [सि० १-३-१८] C.।

३. C. प्रतौ नास्ति ।

४. 'अथ षान्तः द्विषः' इत्येव पाठोऽस्ति A.B.।

५. ऋदुशनस्-पुरुदंशोऽनेहसश्च सेर्डाः [सि० १-४-८४] A.। उशनः पुरुदंशोऽनेहसां सावनन्तः [२-२-२२ का०] अन्तस्याऽन् A.। C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
उशनसि	उशनसोः	उशनस्सु
[१]सं० हे उशनः,उशनन्,उशन	हे उशनसौ	हे उशनसः

[२]एवं पुरुदंशस् ।

सं०हे पुरुदंशः	हे पुरुदंशसौ	हे पुरुदंशसः

एवमनेहस् ।

[३]प्रचेतस्शब्दे तु सौ परे-

प्रचेताः	प्रचेतसौ	प्रचेतसः
प्रचेतसम्	प्रचेतसौ	प्रचेतसः

प्रचेतसा० शेषं पूर्ववत् ।

एवं चन्द्रमस्-सु[४]श्रोतस्-विष्टरश्रवस्-[५]उच्चैःश्रवस्-कृत्तिवासस्-[६]जग्मिवस् ।

[७]जग्मिवान्	जग्मिवांसौ	जग्मिवांसः
जग्मिवांसम्	जग्मिवांसौ	[८]जग्मुषः
जग्मुषा	[९]जग्मिवद्भ्याम्	जग्मिवद्भिः
जग्मुषे०	जग्मिवद्भ्याम्	जग्मिवद्भ्यः
जग्मुष०	जग्मिवद्भ्याम्	जग्मिवद्भ्यः
जग्मुषः	जग्मुषोः	जग्मुषाम्

---

१. संबोधने वोशनसो नश्चामन्त्र्ये सौ [सि० १-४-८०] इति सूत्रेण विकल्पेन सकारलोपे कृते च रूपत्रयम् A.B.। उशनः पुरुदंशोऽनेहसां सावनन्तः [२-२-२२ का०] तत्राऽनिर्दिष्टमिति न्यायात् त्रीणि रूपाणि भवन्ति A. ।

२. C. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

३. पा० प्रचेतस् शब्दे तु सौ प्रचेताः शेषं पूर्ववत् C.।

४. पा० शुश्रो० C. । ५. C. प्रतौ नास्ति । ६. A.B. प्रतौ नास्ति ।

७. A.B. प्रतौ विद्वस्शब्दस्य रूपाणां पश्चाद् जग्मिवस्शब्दस्य रूपाणि सन्ति । ऋदुदितः [सि० १-४-७०] नोऽन्त, न्स्महतोः [सि० १-४-८६] दीर्घत्वम्, ततः C.।

८. क्वसुष् मतौ च [सि० २-१-१०५] उत्वम् A., अघुट्स्वरादौ सेट्कस्याऽपि वन्सेर्वशब्दस्योत्वम् [२-२-४६ का०] A.। क्वसुष् मतौ च [सि० २-१-१०५] इत्यनेन C.।

९. धुटस्तृतीयः [सि. २-१-७६] सस्य दत्वे C. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जग्मुषि	जग्मुषोः	जग्मिवत्सु
सं०हे जग्मिवन्	हे जग्मिवांसौ	हे जग्मिवांसः

[1]विकल्पेनेट्-

जगन्वान्	जगन्वांसौ	जगन्वांसः
जगन्वांसम्	जगन्वांसौ	जगमुषः
जगमुषा	जगमुद्भ्याम्	जगमुद्भिः
जगमुषे	जगमुद्भ्याम्०	
सं०हे जगन्वन्	हे जगन्वांसौ	हे जगन्वांसः

एवं तस्थिवन्स् ।

विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
विद्वांसम्	विद्वांसौ	[2]विदुषः
विदुषा	[3]विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सं० हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

एव पेचिवन्स् ।

स्त्रियां तु [4]जग्मुषी-[5]जगमुषी, विदुषी पेचुषी नदीवत् ।

अथ हान्तः ।

[7]मधुलिट्, मधुलिड्	मधुलिहौ	मधुलिहः
मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः

१. A.B. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

२. अधुट्स्वरादौ सेट्कस्याऽपि वन्सेर्वशब्दस्योत्वम् [२-२-४६ का०], अनुषङ्गश्चा [क्रुञ्चेत् २-२-३९ का०] अनेन न लोप A.।

३. विरामव्यञ्जनादिष्वनडुन्नहिवन्सीनां च [२-३-४४ का०] A.।

४.५. A.B..प्रतौ नास्ति । ६. C. प्रतौ नास्ति ।

७. हो धुट्-पदान्ते [सि० २-१-८२] हकार ढकार, धुटस्तृतीयः [सि० २-१-७६] ढकार डकार, विरामे वा [सि० १-३-५१] डकार टकार A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु
सं०हे मधुलिट्,मधुलिड्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः

एवं दामलिह् ।

तथा-

[१]अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	[२]अनडुहः
अनडुहा	[३]अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
[४]सं०हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

स्त्रियां त्वनडुही अनड्वाही नदीवत् ।

तथा-

[५]प्रष्ठवाट्, प्रष्ठवाड्	प्रष्ठवाहौ	प्रष्ठवाहः
प्रष्ठवाहम्	प्रष्ठवाहौ	[६]प्रष्ठौहः
प्रष्ठौहा	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भिः
प्रष्ठौहे	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भ्यः

१. वाः शेषे [सि० १-४-८२] ईणइं सूत्रिइं अनडुहशब्दतणा उकार रहइं वा हुइ, धुटां प्राग् नोऽन्त 'अनडुहः सौ' [सि० १-४-७२] ईणइं सूत्रिइं नकारागम, दीर्घ-ड्याब्-व्यञ्जनात् सेः [सि० १-४-४५] सि लोप, पदस्य [सि० २-१-८९] ह लोप A.।

२. अनडुहश्च [२-२-४२ का०] A.।

३. विरामव्यञ्जनादिष्वनडुन्नहिवन्सीनां च [२-३-४४ का०] A.।
स्रंस्-ध्वंस्-क्वस्सनडुहो दः [सि० २-१-६८] C.।

४. संबुद्धावुभयोर्ह्रस्वः [२-२-४४ का०] A.।

५. पा० प्रष्टवाह् A.B. पृष्ट्वाह् C.। ६. वाहेर्वाशब्दस्यौ कातन्त्रे [२-२-४८] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रष्ठौहः	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भ्यः
प्रष्ठौहः	प्रष्ठौहोः	प्रष्ठौहाम्
प्रष्ठौहि	प्रष्ठौहोः	प्रष्ठवाट्सु
सं०हे प्रष्ठवाट्,प्रष्ठवाड्	हे प्रष्ठवाहौ	हे प्रष्ठवाहः

[1]स्त्रियां तु प्रष्ठौही नदीवत् ।

तथा-

[2]गोधुक्, गोधुग्	गोदुहौ	गोदुहः
गोदुहम्	गोदुहौ	गोदुहः
गोदुहा	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भिः
गोदुहे	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भ्यः
गोदुहः	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भ्यः
गोदुहः	गोदुहोः	गोदुहाम्
गोदुहि	गोदुहोः	गोधुक्षु
सं०हे गोधुक्, गोधुग्	हे गोदुहौ	हे गोदुहः

[3]स्त्रियां तु गोदुही नदीवत् ।

अथ क्षान्तः ।

[4]काष्ठतट्, काष्ठतड्	काष्ठतक्षौ	काष्ठतक्षः
काष्ठतक्षम्	काष्ठतक्षौ	काष्ठतक्षः
काष्ठतक्षा	काष्ठतड्भ्याम्	काष्ठतड्भिः
काष्ठतक्षे	काष्ठतड्भ्याम्	काष्ठतड्भ्यः
काष्ठतक्षः	काष्ठतड्भ्याम्	काष्ठतड्भ्यः

---

१. पा० स्त्रियां तु नदीवत् A.B. ।

२. हच [तुर्थान्तस्य धातोस्तृतीयाद्वेरादिरादिचतुर्थत्वमकृतवत् २-३-५० का०] द् ध्, दाहेर्हस्य गः [२-३-४७ का०] हकार गकार A.।

३. पा० एवं स्त्रियां तु A.B.।

४. संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् [सि० २-१-८८] क् लोप A., संयोगादेर्घुटः [२-३-५५ का०] A.। संयोगस्यादौ स्कोर्लुक् [सि० २-१-८८] B.C.। C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः एकवचनस्य, तृतीयायाः द्वि-बहुवचनयोः, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काष्ठतक्षः	काष्ठतक्षोः	काष्ठतक्षाम्
काष्ठतक्षि	काष्ठतक्षोः	काष्ठतट्सु
सं० हे काष्ठतट्, काष्ठतड्	हे काष्ठतक्षौ	हे काष्ठतक्षः

[१]एवं साधुतक्ष्- गोरक्ष्

इति व्यञ्जनान्ताः पुंलिङ्गाः समाप्ताः ।

★

[२]स्त्रीत्वे-

[३]त्वच्वाचौ [४]स्रुच्स्रजौ स्फिग् च योषिच्च तडिद्विद्युतौ ।
सम्पदापत्प्रतिपच्च दृषच्छरच्च संविदः ॥१॥

सत्संसदौ परिषत् [६]क्षुध्-समिधौ पापसीमानौ ।
आपः ककुप्त्रिष्टुभौ च गीर्धूः [८]पूर्द्वार्दिव्दिग्दृशः ॥२॥

रुट् [९]वृट् प्रावृष्विप्रुषौ [११]वाऽऽशीः सजूः सुमनास्तथा ।
[१३]उपानह्प्रमुरवाः प्राज्ञैर्व्यञ्जनान्ताः स्मृताः स्त्रियाम् ॥३॥

[१४]अथ व्यञ्जनान्ताः स्त्रीलिङ्गाः आरभ्यन्ते ।

तत्र प्रथमं चान्तः ।

[१५]त्वक्, त्वग्	त्वचौ	त्वचः
त्वचम्	त्वचौ	त्वचः
त्वचा	त्वग्भ्याम्	त्वग्भिः
त्वचे	त्वग्भ्याम्	त्वग्भ्यः
त्वचः	त्वग्भ्याम्	त्वग्भ्यः
त्वचः	त्वचोः	त्वचाम्

१. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।
२. A.B. प्रतौ नास्ति ।
३. पा० त्वग्वाचौ A.B.C.।
४. पा० स्कच्स्रजौ A.B., स्रुचस्रुचौ C.।
५. पा० स्पक् A., स्पक् B.।
६. पा० क्षुत्स० A.B.।
७. पा० ०त्रिषूभौ C.।
८. पा० पूर्वार्द्वादिव्० C.।
९. पा० तृट् C.।
१०. पा० प्रावृट्वि० C.।
११. पा० चाऽऽशीः C.।
१२. पा० सुमनस्तथा C.।
१३. पा० उपानहमुखा C.।
१४. पा० एतेषु चान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दाः प्रारभ्यन्ते C.।
१५. चवर्गदृगादीनां च [२-३-४८ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वचि	त्वचोः	त्वक्षु
सं०हे त्वक्, त्वग्	हे त्वचौ	हे त्वचः

एवं वाच्-स्रुच्मुख्याः ।

अथ जान्तः ।

[1]स्रक्, स्रग्	स्रजौ	स्रजः
स्रजम्	स्रजौ	स्रजः
स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः
स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु
सं० हे स्रक्, स्रग्	हे स्रजौ	हे स्रजः

एवं स्फिज्[2]प्रभृतयः ।

अथ तान्तः ।

[3]योषित्, योषिद्	योषितौ	योषितः
योषितम्	योषितौ	योषितः
योषिता	योषिद्भ्याम्	योषिद्भिः
योषिते	योषिद्भ्याम्	योषिद्भ्यः
योषितः	योषिद्भ्याम्	योषिद्भ्यः
योषितः	योषितोः	योषिताम्
योषिति	योषितोः	योषित्सु
सं०हे योषित्,योषिद्	हे योषितौ	हे योषितः

एवं तडित्-विद्युत्-हरित्-सरित्प्रभृतयः ।

---

१. चवर्गदृगादीनां च [२-३-४८ का०] A.।

२. पा० स्पज्मुख्याः A.B.।

३. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनसोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ दान्तः ।

[1]सम्पत्, सम्पद्	सम्पदौ	सम्पदः
सम्पदम्	सम्पदौ	सम्पदः
सम्पदा	सम्पद्भ्याम्	सम्पद्भिः
सम्पदे	सम्पद्भ्याम्	सम्पद्भ्यः
सम्पदः	सम्पद्भ्याम्	सम्पद्भ्यः
सम्पदः	सम्पदोः	सम्पदाम्
सम्पदि	सम्पदोः	सम्पत्सु
सं०हे सम्पत्, सम्पद्	हे सम्पदौ	हे सम्पदः

एवमापद्-[2]प्रतिपद्-दृषद्-शरद्-संविद्-सद्-परिषद्-विपद्[3]-[4]संसद्प्रभृतयः ।

अथ धान्तः ।

[5]क्षुत्, क्षुद्	क्षुधौ	क्षुधः
क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुधः
क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भिः
क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
क्षुधः	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्यः
क्षुधः	क्षुधोः	क्षुधाम्
क्षुधि	क्षुधोः	क्षुत्सु
सं०हे क्षुत्,क्षुद्	हे क्षुधौ	हे क्षुधः

एवं क्रुध्-समिद्प्रभृतयः ।

अथ नान्तः ।

पामा	पामानौ	पामानः
पामानम्	पामानौ	पाम्नः

---

१. C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः द्विवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. C. प्रतौ नास्ति ।

३.४. A.B. प्रतौ नास्ति ।

५. अघोषे प्रथम [२-३-६१ का०] A.। C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः एकवचनस्य, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाम्ना	पामभ्याम्	पामभिः
पाम्ने	पामभ्याम्	पामभ्यः
पाम्नः	पामभ्याम्	पामभ्यः
पाम्नः	पाम्नोः	पामसु
[१]पाम्नि, पामनि	पाम्नोः	पामसु
सं०हे पामन्	हे पामानौ	हे पामानः

एवं सीमन् । विकल्पेन पामा-सीमा श्रद्धावत् ।

अथ पान्तः ।

[२]आपः [३]अपः [४]अद्भिः अद्भ्यः अद्भ्यः अपाम् अप्सु सं०हे आपः ।

अथ भान्तः ।

[५]ककुप्, ककुब्	ककुभौ	ककुभः
ककुभम्	ककुभौ	ककुभः
ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः
ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
ककुभः	ककुभोः	ककुभाम्
ककुभि	ककुभोः	ककुप्सु
सं०हे ककुप्, ककुब्	हे ककुभौ	हे ककुभः

[६]एवं त्रिष्टुभ्-विधभ्प्रभृतयः ।

अथ रान्तः ।

[७]गीः	गिरौ	गिरः

---

१. ईड्योर्वा [२-२-५४ का०] A.। C. प्रतौ पाम्नि इत्येकमेव रूपमस्ति ।

२. अपश्च [२-२-१३ का०] दीर्घ A.। C. प्रतौ अप्शब्दस्य रूपाणि न सन्ति ।

३. B. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति A.। ४. अपां भे दः [२-३-४३ का०] A.।

५. हचतुर्थान्तस्य धातो[स्तृतीयादेरादिचतुर्थत्वमकृतवत् [२-३-५० का०], वा विरामे [२-३-६२ का०] बकार पकार A.। C. प्रतौ प्रथमायाः तृतीयायाश्च एकद्विवचनयोः, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

६. पा० एवं विधभ्प्रभृतयः A.B., एवं त्रिष्टुप्मुखाः C.।

७. इरुरोरीसूरौ [२-३-५२ का०] पदान्ते गिरइ गीरइ A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरम्	गिरौ	गिरः
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
गिरः	गिरोः	गिराम्
गिरि	गिरोः	गीर्षु
सं०हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

एवं धुर्-पुर्-द्वार्प्रभृतयः ।

अथ वान्तः ।

[१]द्यौः	दिवौ	दिवः
दिवम्	दिवौ	दिवः
दिवा	[३]द्युभ्याम्	द्युभिः
दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
दिवः	दिवोः	दिवाम्
दिवि	दिवोः	द्युषु
सं०हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः

एतमतिदिव् ।

अथ शान्तः ।

[४]दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
दिशम्	दिशौ	दिशः
दिशा	[५]दिग्भ्याम्	दिग्भिः

१. औ सौ [२-२-२६ का०] वकार औकार A.। C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि द्वितीयायाः एकवचनस्य, तृतीयायाः द्विवचनस्य, तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. वाम्या [२-२-२७ का०] वकार आ A.।

३. दिव उद् व्यञ्जने [२-२-२५ का०] वकार उकार A.।

४. चवर्ग [दृगादीनां च २-३-४८ का०], अघोषे प्रथमः [२-३-६१ का०] A.। C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

५. चवर्गदृगादीनां च [२-३-४८ का०] शकार गकार् A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
दिशः	दिशोः	दिशाम्
दिशि	दिशोः	दिक्षु
सं०हे दिक्, दिग्	हे दिशौ	हे दिशः

एवं दृश्प्रभृतयः ।

अथ षान्तः ।

[1]रुट्, रुड्	रुषौ	रुषः
रुषम्	रुषौ	रुषः
रुषा	रुड्भ्याम्	रुड्भिः
रुषे	रुड्भ्याम्	रुड्भ्यः
रुषः	रुड्भ्याम्	रुड्भ्यः
रुषः	रुषोः	रुषाम्
रुषि	रुषोः	रुट्सु
सं० हे रुट्, रुड्	हे रुषौ	हे रुषः

एवं [2]मृष्-तृष्[3]-प्रावृष्-विप्रुष्प्रभृतयः ।

तथा-

[5]आशीः	आशिषौ	आशिषः
आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
आशिषि	आशिषोः	आशिषाम्
सं०हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः

एवं सजुष् ।

१. हशषछान्तेजादीनां डः [२-३-४६ का०] A.

२. C. प्रतौ नास्ति । ३-४. B. प्रतौ नास्ति ।

५. सजुषाशिषो रः [२-३-५१ का०] इरुरोरीरुरौ [२-३-५२ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सान्तः ।

[१]सुमनाः	सुमनसौ	सुमनसः
सुमनसम्	सुमनसौ	सुमनसः
सुमनसा	सुमनोभ्याम्	सुमनोभिः
सुमनसे	सुमनोभ्याम्	सुमनोभ्यः
सुमनसः	सुमनोभ्याम्	सुमनोभ्यः
सुमनसः	सुमनसोः	सुमनसाम्
सुमनसि	सुमनसोः	सुमनस्सु
सं०हे सुमनः	हे सुमनसौ	हे सुमनसः

एवमन्येऽपि ।

अथ हान्तः ।

[२]उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सं०हे उपानत्, उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः

एवं व्यञ्जनान्ताः स्त्रीलिङ्गा समाप्ताः ।

★

अथ नपुंसकव्यञ्जनान्ता आरभ्यन्ते ।

जगदुदश्चित्पृषतौ[३] जन्म कर्म च [४]र्चम्म च ।
[५]वर्म शर्मपर्वणी च सामदाम्नी च भस्म च ॥१॥

---

१. पा० सुमनः A.B. । C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि, द्वितीयायाः एकवचनस्य तृतीयायाः द्विबहुवचनयोः, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. विरामव्यञ्जनादिष्वनडुन्नहिवन्सीनां च [२-३-४४ का०] A.।

३. पा० ०पृषतौ A.B., ०पृषतो C.। ४. पा० वर्म्म C.। ५. पा० चर्म C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहःस्वपी मनः सर्प्पि-र्यशोऽरुश्च[१] [२]वयः पयः ।
चेतो [३]बर्हिर्धनुर्ज्योति[४]-रायुर्वपू[५] रजो यजुः[६] ॥२॥

तत्र प्रथमं तान्तः ।

[७]जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
जगत्, जगद्	जगती	जगन्ति
जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
जगतः	जगतोः	जगताम्
जगति	जगतोः	जगत्सु
सं०हे जगत्, जगद्	हे जगती	हे जगन्ति

एवंमुदञ्चित्-पृषत् प्रमुखाः ।

अथ नान्तः ।

[९]जन्म	जन्मनी	जन्मानि
जन्म	जन्मनी	जन्मानि
जन्मना	जन्मभ्याम्	जन्मभिः
जन्मने	जन्मभ्याम्	जन्मभ्यः
जन्मनः	जन्मभ्याम्	जन्मभ्यः
जन्मनः	जन्मनोः	जन्मनाम्
जन्मनि	जन्मनोः	जन्मसु
सं०हे जन्म[१०], जन्मन्	हे जन्मनी	हे जन्मानि

---

१. पा० यशोऽरुच्च C.।
२. पा० पयो वयः C.।
३. पा० बहिधनु० A.B.।
४. पा० जोति० A.B.।
५. पा० वपु A.B.C.।
६. पा० यजु A.B., युजः C.।
७. नपुंसकात् स्यमोलोपो [न च तदुक्तम् २-२-६ का०] सिलोप, धुटां तृतीयः [२-३-६० का०] तकार दकार A.।
८. पा० एवं तन्-पृषत्प्रभृतयः A.B.।
९. नपुंसकात् स्यमोर्लोपो [न च तदुक्तम् २-२-६ का०] A.।
१०. क्लीबे वा [सि० २-१-९३] न लोप C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एवं कर्म्मन्-चर्म्मन्-वर्म्मन्-शर्म्मन्-पर्व्वन्-भस्मन्प्रभृतयः ।

तथा-

[2]साम	[3]साम्नी, सामनी	सामानि
साम	साम्नी, सामनी	सामानि
साम्ना	सामभ्याम्	सामभिः
साम्ने	सामभ्याम्	सामभ्यः
साम्नः	सामभ्याम्	सामभ्यः
साम्नः	साम्नोः	साम्नाम्
साम्नि, सामनि	साम्नोः	सामसु
सं०हे साम, सामन्	हे साम्नी, सामनी	हे सामानि

एवं दामन्-लोमन्-रोमन्प्रभृतयः ।

तथा-

[4]अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
अहः	अह्नी, अहनी	अहानि
अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
अह्नि, अहनि	अह्नोः	अह(हः?)सु
सं० हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि

---

१. एवं कर्मन्प्रभृतयः C.।

२. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

३. ईङ्योर्वा [२-२-५४ का०] अ लोप A.।

४. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पान्तः ।

स्वप्, स्वब्[1]	स्वपी	[2]स्वाम्पि, [3]स्वम्पि
स्वप्, स्वब्	स्वपी	स्वाम्पि, स्वम्पि
स्वपा	स्वब्भ्याम्	स्वब्भिः
स्वपे	स्वब्भ्याम्	स्वब्भ्यः
स्वपः	स्वब्भ्याम्	स्वब्भ्यः
स्वपः	स्वपोः	स्वपाम्
स्वपि	स्वपोः	स्वप्सु
सं०हे स्वप्, स्वब्	हे स्वपी	हे स्वाम्पि, स्वम्पि

अथ सान्तः ।

[4]मनः	मनसी	मनांसि
मनः	मनसी	मनांसि
मनसा	मनोभ्याम्	मनोभिः
मनसे	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
मनसः	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
मनसः	मनसोः	मनसाम्
मनसि	मनसोः	मनस्सु
सं०हे मनः	हे मनसी	हे मनांसि

एवं यशस्-चेतस्-पयस्-रजस्-प्रेयस्[5]प्रभृतयः ।

तथा-

सर्प्पिः	सर्प्पिषी	सर्प्पींषि
सर्प्पिः	सर्प्पिषी	सर्प्पींषि
सर्प्पिषा	सर्प्पिर्भ्याम्	सर्प्पिर्भिः

१. वा विरामे [२-३-६२ का०] पकार बकार A.। C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. नि वा [सि० १-४-८९] C. ।

३. A.B. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

४. C प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

५. A.B. प्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्प्पिषे	सर्प्पिर्भ्याम्	सर्प्पिर्भ्यः
सर्प्पिषः	सर्प्पिर्भ्याम्	सर्प्पिभ्यः
सर्प्पिषः	सर्प्पिषोः	सर्प्पिषाम्
सर्प्पिषिः	सर्प्पिषोः	सर्प्पिष्षु
सं०हे सर्प्पिः	हे सर्प्पिषी	हे सर्प्पींषि

एवमरुस्-बर्हिस्-धनुस्-ज्योतिस्-आयुस्-वपुस्-[१]यशस्-[२]यजुस् प्रभृतयः ।
एवं व्यञ्जनान्ता नपुंसकाः समाप्ताः ।

★

अथ विशेषशब्दाः प्रारभ्यन्ते ।

दन्तः	दन्तौ	दन्ताः
दन्तम्	दन्तौ	[३]दतः, दन्तान्
दता, दन्तेन	[४]दद्भ्याम्, [५]दन्ताभ्याम्	दद्भिः, दन्तैः
दते, दन्ताय	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
दतः, दन्तात्	दद्भ्याम्, दन्ताभ्याम्	दद्भ्यः, दन्तेभ्यः
दतः, दन्तस्य	दतोः, दन्तयोः	दताम्, दन्तानाम्
दति, दन्ते	दतोः, दन्तयोः	दत्सु, दत्सु, दन्तेषु
सं०हे दन्त	हे दन्तौ	हे दन्ताः

१. A.B. प्रतौ नास्ति । २. C. प्रतौ नास्ति ।

३. दन्तपादनासिकाहृदयासृग्यूषोदकदोर्यकृच्छकृतां वा शसादिकविभक्तिनिमित्तभूतिइं दन्त दत् आदेश हुइ, पाद पद्, नासिका नस्, हृद्, असन्, यूषन्, उदन्, दोषन्, यकन्, शकन् वा स्यात् A.। दन्त, पाद, नासिका, हृदय, असृज्, यूष, उदक, दोष्, यकृत्, शकृत् [इत्येतेषां] क्रमेण दत्, पद्, नस्, हृद्, असन्, यूषन्, उदन्, दोषन्, यकन्, शकन् आदेशाः भवन्ति B.। दन्तपादनासिकाहृदयासृग्यूषोदकदोर्यकृ [च्छकृतो दत्-पन्नस्-हृदसन्-यूषन्नुदन्-दोषन्-यकन् शकन् वा सि० २-१-१०१] इत्यनेन शसादौ दन्तादीनां यथासङ्ख्यं दत् इत्यादयो वा स्युः C.।

४. धुटां तृतीयः [२-३-६० का०] तकार दकार A.।

५. अकारो दीर्घं घोषवति [२-१-१४ का०] A.।

६. शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा [सि० १-३-५९] त थ । वर्ग्रादेशषशेषद्वितीयो वा त थ [?] । A. । शिट् प्रथमद्वितीयस्य तकार थकार हैम B.। शिट्याद्यस्य द्वितीयो वा [सि० १-३-५९] C.। ७. A.B.C. प्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पादः	पादौ	पादाः
पादम्	पादौ	पदः, पादान्
पादा, पादेन	पाद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भिः, पादैः
पदे, पादाय	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः, पादेभ्यः
पदः, पादात्	पद्भ्याम्, पादाभ्याम्	पद्भ्यः, पादेभ्यः
पदः, पादस्य	पदोः, पादयोः	पदाम्, पादानाम्
पदि, पादे	पदोः, पादयोः	पथ्सु, [2]पत्सु, पादेषु
सं० हे पाद	हे पादौ	हे पादः
[3]नासिका	नासिके	नासिकाः
नासिकाम्	नासिके	नसः, नासिकाः
नसा, नासिकया	[4]नोभ्याम्,नासिकाभ्याम्	[5]नोभिः,नासिकाभिः
नसे, नासिकायै	[6]नोभ्याम्,नासिकाभ्याम्	[7]नोभ्यः,नासिकाभ्यः
नसः,नासिकायाः	[8]नोभ्याम्,नासिकाभ्याम्	[9]नोभ्यः,नासिकाभ्यः
नसः, नासिकायाः	नसोः, नासिकयोः	नसाम्,नासिकानाम्
नसि, नासिकायाम्	नसोः, नासिकयोः	[10]नथ्सु,नत्सु,नासिकासु
सं० हे नासिके	हे नासिके	हे नासिकाः
[11]हृदयम्	हृदये	हृदयानि
हृदयम्	हृदये	[12]हृन्दि, हृदयानि

१. पादः देववत्, पादान् पदः, पादेन पदा, पादाभ्यां पद्भ्याम् इत्येतान्येव रूपाणि सन्ति C.।

२. A.B. प्रतौ नास्ति ।

३. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

४-५-६. A.B. प्रतौ नास्ति । तत्र नद्भ्याम् इति रूपमस्ति । लवर्णतवर्ग्रलसादन्त्यात् इति - यात् स० दकार [?] A.।

७-८-९. A.B. प्रतौ नास्ति । तत्र नद्भिः, नद्भ्यः, नद्भ्यः इति रूपाणि सन्ति ।

१०. नथ्सु, नस्सु, नासिकासु A.B., नासिकासु, नस्सु C.।

११. प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति प्रतौ C.।

१२. दन्तपाद० [सि० २-१-१०१] इत्यादिना C. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदा, हृदयेन	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भिः, हृदयैः
हृदे, हृदयाय	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भ्यः, हृदयेभ्यः
हृदः, हृदयात्	हृद्भ्याम्, हृदयाभ्याम्	हृद्भ्यः, हृदयेभ्यः
हृदः, हृदयस्य	हृदोः, हृदययोः	हृदाम्, हृदयानाम्
हृदि, हृदये	हृदोः, हृदययोः	[१]हृत्सु, हृत्सु, हृदयेषु
सं० हे हृदय	हे हृदये	हे हृदयानि
[२]असृक्, असृग्	असृजी	असृंजि
असृक्, असृग्	असृजी	असानि, असृंजि
[३]अस्ना, असृजा	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभिः, असृग्भिः
अस्ने, असृजे	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभ्यः, असृग्भ्यः
अस्नः, असृजः	असभ्याम्, असृग्भ्याम्	असभ्यः, असृग्भ्यः
अस्नः, असृजः	अस्नोः, असृजोः	अस्नाम्, असृजाम्
अस्नि, [४]असनि, असृजि	अस्नोः, असृजोः	[५]असस्सु, असृक्षु
सं०हे असृक्, असृग्	हे असृजी	हे असृंजि
[६]यूषः	यूषौ	यूषाः
यूषम्	यूषौ	[७]यूष्णः, यूषान्
यूष्णा, यूषेण	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभिः, यूषैः
यूष्णे, यूषाय	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः, यूषेभ्यः
यूष्णः, यूषात्	यूषभ्याम्, यूषाभ्याम्	यूषभ्यः, यूषेभ्यः
यूष्णः, यूषस्य	यूष्णोः, यूषयोः	यूष्णाम्, यूषाणाम्

१. वर्ग्रादेशषशेषद्वितीयो वा त थ [?] A.।

२. चवर्गदृगादीनां च [२-३-४८ का०] A.। C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

३. अवमसंयोगादनोऽलोपो [ऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ २-२-५३ का०] A.।

४. B. प्रतौ नास्ति ।

५. अस्सु A.B.।

६. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

७. अवमसंयोगादनोऽलोपो [ऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ २-२-५३ का०] A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यूष्णि, यूषणि, यूषे	यूष्णोः, यूषयोः	यूषसु, यूषेसु
सं० हे यूष	हे यूषौ	हे यूषाः
[1]उदकम्	उदके	उदकानि
उदकम्	उदके	उदानि, उदकानि
[2]उद्ना, उदकेन	[3]उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभिः, उदकैः
उद्ने, उदकाय	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभ्यः, उदकेभ्यः
उद्नः, उदकात्	उदभ्याम्, उदकाभ्याम्	उदभ्यः, उदकेभ्यः
उद्नः, उदकस्य	उद्नोः, उदकयोः	उद्नाम्, उदकानाम्
उदिन्, उदनि, उदके	उद्नोः, उदकयोः	उदसु, उदकेषु
सं०हे उदक	हे उदके	हे उदकानि
[4]दोः	दोषौ	दोषः
दोषम्	दोषौ	दोष्णः, दोषः
दोष्णा, दोषा	[5]दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भिः, दोषभिः
दोष्णे, दोषे	दोर्भ्याम्, दोषभ्याम्	दोर्भ्यः, दोषभ्यः
दोष्णः, दोषः	दोष्णोः, दोषोः	दोष्णाम्, दोषाम्
दोष्णि, दोषणि,दोषि	दोष्णोः, दोषोः	[6]दोष्षु, [7]दोःषु, दोषसु
सं०हे दोः	हे दोषौ	हे दोषः

नपुंसके-

दोः	[8]दोषी	दोंषि
दोः	[9]दोषी	दोंषि, दोषाणि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

१. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

२. अवमसंयोगा [दनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ २-२-५३ का०] अकार लोप A.।

३. लिङ्गान्तनकारस्य [२-३-५६ का०] नकार लोप A.।

४. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

५. इसुस्दोषां घोषवति रः [२-३-५९ का०] सकार रेफ A.।

६. पा० दोस्सु A.B.C.। ७. A.B.C. प्रतौ नास्ति । ८-९. पा० दोषणी C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]यकृत्, यकृद्	यकृती	यकृन्ति
यकृत्, यकृद्	यकृती	यकानि, यकृन्ति
यक्ना, यकृता	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभिः, यकृद्भिः
यक्ने, यकृते	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभ्यः, यकृद्भ्यः
यक्नः, यकृतः	यकभ्याम्, यकृद्भ्याम्	यकभ्यः, यकृद्भ्यः
यक्नः, यकृतः	यक्नो, यकृतोः	यक्नाम्, यकृताम्
यक्नि,यकनि,यकृति	यक्नोः, यकृतोः	यकसु, [२]यकृत्सु
सं०हे यकृत्, यकृद्	हे यकृती	हे यकृन्ति
[३]शकृत्, शकृद्	शकृती	शकृन्ति
शकृत्, शकृद्	शकृती	शकानि, शकृन्ति
शक्ना, शकृता	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्	शकभिः, शकृद्भिः
शक्ने, शकृते	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्	शकभ्यः, शकृद्भ्यः
शक्नः, शकृतः	शकभ्याम्, शकृद्भ्याम्	शकभ्यः, शकृद्भ्यः
शक्नः, शकृतः	शक्नोः, शकृतोः	शक्नाम्, शकृताम्
शक्नि,शकनि,शकृति	शक्नोः, शकृतोः	शकसु, शकृत्सु
सं०हे शकृत्,शकृद	हे शकृती	हे शकृन्ति
[४]मासः	मासौ	मासाः
मासम्	मासौ	[५]मासः, मासान्
मासा, मासेन	माद्भ्याम्, मासाभ्याम्	माद्भिः, मासैः
मासे, मासाय	माद्भ्याम्, मासाभ्याम्	माद्भ्यः, मासेभ्यः

१. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

२. पा० यकृक्षु A.।

३. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि, तृतीयाया एकद्विवचनयोस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

४. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः बहुवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

५. मासनिशासनस्य शसादौ लुग्वा [सि० २-१-१००] मास् निस्(श्) आसन् आदेशा । मासनिशासनस्य शसादौ लुग्वा [सि० २-१-१००] C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मासः, मासात्	माद्भ्याम्, मासाभ्याम्	माद्भ्यः, मासेभ्यः
मासः, मासस्य	मासोः, मासयोः	मासाम्, मासानाम्
मसि, मासे	मासोः, मासयोः	माथ्सु, [१]मासु, मासेषु
सं० हे मास	हे मासौ	हे मासाः
[२]निशा	निशे	निशाः
निशाम्	निशे	निशः, निशाः
निशा, निशया	[३]निज्भ्याम्, निशाभ्याम्	निज्भिः, निशाभिः
निशे, निशायै	निज्भ्याम्, निशाभ्याम्	निज्भ्यः, निशाभ्यः
निशः, निशायाः	निज्भ्याम्, निशाभ्याम्	निज्भ्यः, निशाभ्यः
निशः, निशायाः	निशोः, निशयोः	निशाम्, निशानाम्
निशि, निशायाम्	निशोः, निशयोः	निच्शु, [४]निच्छु, निशासु
सं० हे निशे	हे निशे	हे निशाः
[५]आसनम्	आसने	आसनानि
आसनम्	आसने	आसानि, आसनानि
[६]आस्ना, आसनेन	आसभ्याम्, [७]आसनाभ्याम्	आसभिः, आसनैः
आस्ने, आसनाय	आसभ्याम्, आसनाभ्याम्	आसभ्यः, आसनेभ्यः

१. मास्सु, मासेषु द्वे रूपे स्तः C.।

२. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति ।

३. 'इवर्णचवर्गयशास्तालव्या' इति वचनात् स्थानतरतमत्वे धुटां तृतीयः [२-३-६० का०] इत्यनेन शस्य जो भवति A. । (?)

४. व्याकरणसूत्रं सस्य शषौ [सि० १-३-६१] सकारस्य स्थाने शः, चवर्गटवर्गाभ्यां योगे यथासङ्ख्यं सकारस्य शकारषकारौ आदेशौ भवति (तः) । इवर्णचवर्गाः सस्थाने तरतम अघोषे प्रथमः [२-३-६१ का०] अनेन जकार चकार कृत्वा वर्गप्रथमा इत्यादिना शकारस्य छकारि A. । (?)

५. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च सर्वाणि, चतुर्थ्याः एकवचनस्य तथा सप्तम्याः सर्वाणि रूपाणि सन्ति A.।

६. अवमसंयोगा [दनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ २-२-५३ का०] अकार लोप, स्वरादेशः पर निमित्तकः प्रतिस्थानि वदति A.।

७. लिङ्गान्तनकारस्य [२-३-५६ का०] नकारलोपाभावे A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्नः, आसनात्	आसभ्याम्, आसनाभ्याम्	आसभ्यः, आसनेभ्यः
आस्नः, आसनस्य	आस्नोः, आसनयोः	आस्नाम्, आसनानाम्
आस्नि,आसनि,आसने	आस्नोः, आसनयोः	[१]आससु, आसनेषु
सं० हे आसन	आसने	हे आसनानि

[२]सखा	[३]सखायौ	सखायः
सखायम्	सखायौ	सखीन्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सं० हे सखे	हे सखायौ	हे सखायः

एवम्-

[४]पतिः	पती	पतयः
पतिम्	पती	पतीन्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
[५]पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सं० हे पते	हे पती	हे पतयः

तथा-

पन्थाः	[६]पन्थानौ	पन्थानः

१. पा० आस्सु A.B.।
२. सख्युश्च अन्तो अन् A. । A.B. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च रूपाणि सन्ति ।
३. घुटि त्वै [२-२-२४ का०] A.।
४. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि तथा तृतीयायाः एकवचनस्य रूपाणि सन्ति ।
५. सखिपत्योर्ङिः [२-१-६१ का०] A.।
६. अनन्तो घुटि [२-२-३६ का०] अन्ते अन् घुटि चासौ A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्थानम्	पन्थानौ	[1]पथः
पथा	पथिभ्याम्	[2]पथिभिः
पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पथः	पथोः	पथाम्
पथि	पथोः	पथिषु
सं० हे पन्थाः[3]	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

एवं [4]मथिन्-ऋभुक्षिन् ।

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः
पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः
पुंसे	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सं० हे पुमान्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

तथा-

भूः	भुवौ	भुवः
भुवम्	भुवौ	भुवः
भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
भुवः	भुवोः	भुवाम्
भुवि	भुवोः	भूषु

१. अघुट्स्वरे लोपम् [२-२-३७ का०] A. ।
२. व्यञ्जने चैषां [२-२-३८ का०] A. ।
३. हे पन्था A.B.C.।
४. पा० मथि-ऋभुक्षि A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः

एवं [१]मनोभूः भ्रूरपि ।

वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः
वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः
वर्षाभ्वे	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
वर्षाभ्वः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वोः	[२]वर्षाभ्वाम्
[३]वर्षाभ्वि	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु
सं० हे वर्षाभूः	हे वर्षाभ्वौ	हे वर्षाभ्वः

एवं [४]दृन्भू-पुनर्भू-[५]कारभूरपि ।

श्रीः	श्रियौ	श्रियः
श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
[६]श्रिये, श्रियै[७]	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
श्रियः, श्रियाः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
श्रियः, श्रियाः	श्रियोः	श्रियाम्, श्रीणाम्
श्रियि, श्रियाम्	श्रियोः	श्रीषु
सं० हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

एवं [८]ह्री-धी-भीः ।

स्त्री	[९]स्त्रियौ	स्त्रियः
स्त्रीम्, स्त्रियम्	स्त्रियौ	[१०]स्त्रीः, स्त्रियः
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः

१. A.B. प्रतौ नास्ति ।
२. पा० वर्षाभूणाम् C.।
३. पा० वर्षाभ्वाम् C.।
४-५. A.B. प्रतौ नास्ति ।
६. संयोगात् [सि० २-१-५२] इय् A.।
७. श्रियै, श्रियाः, श्रियाः, श्रियाम्-एतानि रूपाणि न सन्ति B.।
८. A.B. प्रतौ नास्ति ।
९. स्त्री च [२-२-६१ का०] इय् A.।
१०. वाऽम्-शसि[सि० २-१-५५] C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सं० हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः
[१]अतिस्त्रिः	अतिस्त्रियौ	[२]अतिस्त्रयः
[३]अतिस्त्रिम्,अतिस्त्रियम्	अतिस्त्रियौ	[४]अतिस्त्रीन्,अतिस्त्रियः
अतिस्त्रिणा	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभिः
[५]अतिस्त्रये	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
अतिस्त्रेः	अतिस्त्रिभ्याम्	अतिस्त्रिभ्यः
अतिस्त्रेः	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रीणाम्
[६]अतिस्त्रौ	अतिस्त्रियोः	अतिस्त्रिषु
सं०हे [७]अतिस्त्रे	हे अतिस्त्रियौ	हे [८]अतिस्त्रयः
[९]लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः
लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः
लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः

---

१. अतिक्रान्ता स्त्री येन सः अतिस्त्रिः । एतच्छब्दस्य रूपाणि प्रत्यन्ते चतुष्टयशब्दस्य रूपाणां पश्चाद् वर्तन्ते A.B. । स्त्रीमतिक्रान्तो योऽसौ अतिस्त्रिः । गोश्चान्ते ह्रस्वोऽनंशिसमासेयो बहुव्रीहौ [सि० २-४-९६] C.।

२. अतिस्त्रियः A.B.C.।

३. अत्र अमिकार शशि च गौरप्रधानेत्यादिना ह्रस्वो न भवति अतिस्त्रीम् A.B.।

४. C. प्रतौ तु अतिस्त्रीम्, अतिस्त्रीः इति रूपे स्तः ।

५. अतिस्त्रिये A.B.C.।

६. षष्ठ्याः सप्तम्याश्च ङसि ह्रस्वो न भवति - अतिस्त्रियाम् A.B.।
C. प्रतौ अपि अतिस्त्रियाम् इति रूपं वर्तते ।

७. अतिस्त्रि C.।

८. अतिस्त्रियः A.B.C. ।

९. A.B. प्रतौ एतच्छब्दस्य रूपाणि प्रत्यन्तेऽतिस्त्रिशब्दस्य रूपाणां पश्चाद् वर्तन्ते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	[1]लक्ष्मीणाम्
लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु
सं०हे [2]लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्यः

एवं तरी-अवी-तन्त्रीप्रमुखाः ।

एवम्-

जरा	[3]जरसौ, जरे	जरसी, जरसः, जराः
जरसम्, जराम्	जरसौ, जरे	जरसी, जरसः, जराः
जरसा, जरया	जराभ्याम्	जराभिः
जरसे, जरायै	जराभ्याम्	जराभ्यः
जरसः, जरायाः	जराभ्याम्	जराभ्यः
जरसः, जरायाः	जरसोः, जरयोः	जरसाम्, जराणाम्
जरसि, जरायाम्	जरसोः, जरयोः	जरासु
सं० हे जरे	हे जरसौ, जरे	हे जरसी, जरसः, जराः

समासे त्वतिपूर्वस्त्रिलिङ्गः ।

[4]अतिजरः	अतिजरसौ, अतिजरौ	अतिजरसः, अतिजराः
अतिजरसम्, अतिजरम्	अतिजरसौ, अतिजरौ	अतिजरसः, अतिजरान्
[5]अतिजरसिन,	अतिजराभ्याम्	[6]अतिजरसैः, अतिजरैः
अतिजरसा, अतिजरेण		
अतिजरसे, अतिजराय	अतिजराभ्याम्	अतिजरेभ्यः
अतिजरसः, अतिजरात्	अतिजराभ्याम्	अतिजरेभ्यः

१. पा० लक्ष्मीनाम् A.B.C.। २. पा० लक्ष्मीः C.।

३. जरा जरस् स्वरे वा [२-३-२४ का०] A.।

४. जरामतिक्रान्तो यः स इति अन्यपदार्थे प्रकनस्याम स्त्रियामादादीनां चेति ह्रस्वः [२-४-५२ का० सूत्रस्य वृत्तौ एषः पाठो वर्तते] सर्वत्र इति ह्रस्वत्वेति सूत्रकार्यनिमित्तं कार्यमित्येष निर्देशः A.।

५. कृते एकदेशस्य विकृतित्वात् जरस् आदेशः । तथा - इनादेशः । तेन अतिजरसिन A.। C. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

६. ज्ञापकज्ञापिता विधयो ह्यनित्याः । 'एकदेशविकृतमनन्यवद्' इति परिभाषया एष्करणे जराशब्दस्य (शब्दः) आकारान्तो न ज्ञेयः A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिजरसः, अतिजरस्य अतिजरसोः,अतिजरयोः अतिजरसाम्, अतिजराणाम्

अतिजरसि, अतिजरे अतिजरसोः, अतिजरयोः अतिजरेषु

सं०हे अतिजर हे अतिजरसौ, अतिजरौ हे अतिजरसः,अतिजराः

स्त्रीलिङ्गे अतिजरा जरावत् ।

नपुंसके तु-

[१]अतिजरः,[२]अतिजरसम्, अतिजरसी, अतिजरे अतिजरांसि,अतिजराणि
[३]अतिजरम्

[४]अतिजरः,[५]अतिजरसम्, अतिजरसी, अजितरे अतिजरांसि,अतिजराणि
अतिजरम्

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

सं० हे [६]अतिजरः,अतिजरसम्, हे अतिजरसी,अतिजरे हे अतिजरांसि,अतिजराणि
अतिजरम्

★

अथु त्रिलिङ्गाः लिख्यन्ते ।

[७]शुक्लः कीलालपाश्चैव शुचिश्च [८]ग्रामणीः सुधीः ।
पटुः कमललूः कर्ता [९]सुमाता स्युस्त्रिलिङ्गकाः ॥१॥

तत्र प्रथममकारान्तः ।

[१०]शुक्लः शुक्लौ शुक्लाः

इत्यादि पुंलिङ्गे देववत् ।

[११]स्त्रीलिङ्गे मालावत्- यथा- शुक्ला शुक्ले०

[१२]नपुंसके कुण्डवत्- शुक्लम् शुक्ले०

१.४. A.B. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति । २.५ C. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

३. क्लीबे व्याकरणसूत्रम् अतःस्यमोऽम् [सि० १-४-५७] अकारान्तस्य नपुंसकलिङ्गस्य सम्बन्धिनोः स्यमोरमादेशो भवति । अमोऽकारोच्चारणं जरसादेशार्थम् । पुनर्व्याकरणे जरसो वा [सि० १-४-६०] अनेन स्यमोर्विकल्पेन लुग् A.।

६. A.B.प्रतौ सम्बोधनस्य रूपाणि न सन्ति । प्रतौ केवलम् अतिजर इत्येकमेव रूपं वर्तते ।

७. पा० शुक्लकीला० A.B.। ८. पा० ग्रामणीसुधीः A.B.।

९. पा० सुमतो बहुरासनौ A.B.। १०. पा० शुक्लः पुंलिङ्गे देववत् C.।

११.१२. A.B. प्रतौ एषः पाठ एव नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]शुक्लः शुभ्रस्तथा श्वेतो विशद[२]श्येतपाण्डु[३]राः ।
अवदातः सितो गौरोऽवलक्षो धवलोऽर्जु[४]नः ॥१॥
कृष्णनीलासित[५]श्याम-कालश्यामलचेटकाः ।
[६]पीतो गौरो हरिद्राभो रक्तो रोहितलोहितौ ॥२॥

एते सर्वेऽपि शुक्लवद् ज्ञातव्याः ।

अथ आकारान्ताः ।

कीलालपाः पुंस्त्रीलिङ्गयोः पूर्ववत् ।

नपुंसके-

कीलालपम्	कीलालपे	कीलालपानि
कीलालपम्	कीलालपे	कीलालपानि

इत्यादि वनवत् ।

एवं सोमपा-शिशु[७]पाप्रभृतयः ।

अथ इकारान्ताः ।

शुचिशब्दः पुंसि अग्निवत् ।

[८]स्त्रियां तु-

शुचिः	शुची	शुचयः
शुचिम्	शुची	शुचीः
शुच्या	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
[शुच्यै]शु[९]चये	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
[शुच्याः]शुचेः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
[शुच्याः]शुचेः	शुच्योः	शुचीनाम्

---

१. पा० शुक्लशु० A.B. । २. पा० ०दश्वेति० A.B.।
३. पा० ०पाण्डुरः C.। ४. पा० ०र्जुनाः C.।
५. पा० ०सितः श्यामः C.। ६. पा० पीतगौरो C.।
७. पा० शिशुपाः प्रमुखाः C.। ८. स्त्रियां तु बुद्धिवत् C. । तत्र रूपाणि न सन्ति ।
९. केचित् स्त्रियां वर्तमानस्य शुचिशब्दस्य विकल्पमिच्छन्ति । तन्मते यदा शुचिशब्दः पुंसि स्त्रियां नपुंसके च वर्तते तदा पुंनपुंसकयोः वृत्तिर्व्यवच्छिद्यति । स्त्रियां तु स्वत एव प्रवृत्तत्वात् । तेन ह्रस्वश्च ङवति [२-२-५ का०] इत्यादिना नदीवद्भावो भवत्येव । तथा स्त्रियां बुद्धिवत् A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[शुच्याम्]शुचौ	शुच्योः	शुचिषु
सं० हे शुचे	हे शुची	हे शुचयः

नपुंसके-

[1]शुचि	शुचिनी	शुचीनि
शुचि	शुचिनी	शुचीनि
शुच्या	शुचिभ्याम्	शुचिभिः
[2]शुचिने, शुचये	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
शुचिनः, शुचेः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
शुचिनः, शुचेः	शुचिनो, शुच्योः	शुचीनाम्
शुचिनि, शुचौ	शुचिनोः, शुच्योः	शुचिषु
सं० हे शुचे, शुचि	हे शुचिनी	हे शुचीनि

[3]अथ ईकारान्ताः ।

ग्रामणीः पुंस्त्रियोः पूर्ववत् ।

नपुंसके तु-

ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि
ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि
ग्रामण्या, ग्रामणिना	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभिः
ग्रामण्ये, ग्रामणिने	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
ग्रामण्यः, ग्रामणिनः	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
ग्रामण्यः, ग्रामणिनः	ग्रामण्योः, ग्रामणिनोः	ग्रामण्याम्, [4]ग्रामणीनाम्
ग्रामण्याम्, ग्रामणिनि	ग्रामण्योः, ग्रामणिनोः	ग्रामणिषु
सं० हे ग्रामणि, ग्रामणे	हे ग्रामणिनी	हे ग्रामणीनि

एवमग्रणीप्रभृतयः

शोभना धीर्यस्येति बहुव्रीहौ सुधीः । पुंस्त्रियोः पूर्ववत् ।

---

१. शुचि शुचिनी शुचीनि-वारिवत् A.B.।

२. नामिनः स्वरे [२-२-१२ का०] अनेन नुरागमः A.।

३. अथ ईकारान्ताः पूर्ववत् A.B., पश्चाद् ग्रामणि-इति रूपाणि सन्ति ।

४. पा० ग्रामणिनाम् A.B.C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नपुंसके तु-

सुधि	सुधिनी	सुधीनि
सुधि	सुधिनी	सुधीनि
[1]सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
सुधिये, सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
सुधियः, सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
सुधियः, सुधिनः	सुधियोः, सुधिनोः	सुधियाम्, [2]सुधीनाम्
सुधियि, सुधिनि	सुधियोः, सुधिनोः	सुधिषु
सं० हे [3]सुधि, सुधे	हे सुधिनी	हे सुधीनि

एवमुपार्जितश्री-यवक्री-त्यँक्तह्रीप्रभृतयः ।

अथ उकारान्ताः ।

पटुशब्दः पुंसि शम्भुवत् ।

[5]स्त्रियाम्- पट्वी पट्व्यौ पट्व्यः

इत्यादि नदीवत् ।

विकल्पेन - पटुः पटू पटवः

पटुम् पटू पटूः

पट्वा पटुभ्याम् पटुभिः

शेषं [6]शम्भुवत् ।

नपुंसके तु-

पटु	पटुनी	पटूनि
पटु	पटुनी	पटूनि

---

१. धातोरिवर्णो [वर्णस्येयुव् स्वरे प्रत्यये सि० २-१-५०] इय् A.।
सुधीः [२-२-५७ का०] इय्।

२. पा० सुधिनाम् A.B.C.।

३. नामिनो लुग् वा [सि० १-४-६१] सर्वत्र C.।

४. A.B. प्रतौ नास्ति

५. उतो गुणवचनादखरुसंयोगोपधाद्वा [२-४-५० का० सूत्रस्यवृत्तौ एषः पाठो वर्तते] इति विकल्पेन ईप्रत्यये A.B.। स्वरादुतो गुणादखरोः [सि० २-४-३५] इति वा ङीप्रत्यये पट्वी नदीवत्, विकल्पे तु धेनुशब्दवत्। नपुंसके तु मधुवत् C.।

६. केचित् स्त्रियां ह्रस्वश्च ङवति [२-२-५ का०] इत्यादिना नदीवद्भावं विकल्पयन्ति। तन्मते धेनुवत् A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पटुना	पटुभ्याम्	पटुभिः
पटुने, पटवे[2]	पटुभ्याम्	पटुभ्यः
पटुनः, पटोः	पटुभ्याम्	पटुभ्यः
पटुनः, पटोः	पटुनोः, पट्वोः	पटूनाम्
पटुनि, पटौ	पटुनोः, पट्वोः	पटुषु
सं०हे पटु, पटो	हे पटुनी	हे पटूनि

एवं गुरु-लघु-मृदु-स्वादु-चारुप्रभृतयः ।

अथ ऊकारान्ताः ।

[3]कमललूः पुंसि स्त्रियां च यवलूवत् ।

नपुंसके-

[4]कमललु	कमललुनी	कमललूनि
कमललु	कमललुनी	कमललूनि
कमललुना,कमलल्वा	कमललुभ्याम्	कमललुभिः
कमललुने, कमलल्वे	कमललुभ्याम्	कमललुभ्यः
कमललुनः,कमलल्वः	कमललुभ्याम्	कमललुभ्यः
कमललुनः,कमलल्वः	कमललुनोः,कमलल्वोः	कमललूनाम्,कमलल्वाम्
कमललुनि,कमलल्वि	कमललुनोः,कमलल्वोः	कमललुषु
सं०हे कमललु,कमललो	हे कमललुनी	हे कमललूनि

एवमन्येऽपि ।

कटप्रूः पुंसि स्त्रियां च पूर्ववत् ।

[5]नपुंसके-

कटप्रु	[6]कटप्रुणी	[7]कटप्रूणि
कटप्रु	[8]कटप्रुणी	[9]कटप्रूणि
कटप्रुणा, कटप्रुवा	कटप्रुभ्याम्	कटप्रुभिः

१. पा० पटुना, पट्वा A.B.। २. पा० पट्वे A.B.।

३. कमलूशब्दः A.B.। ४. C.प्रतौ सर्वरूपेषु 'कमलु' इति पाठोऽस्ति।

५. नपुंसके कमललूवत्, पश्चात् प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि तथा तृतीयायाःएकद्विवचनयोः रूपाणि सन्ति C.।

६.८. कटप्रूनी A.B.। ७.९. कटप्रूनि A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटप्रुणे, कटप्रुवे	कटप्रुभ्याम्	कटप्रुभ्यः
कटप्रुणः,कटप्रुवः	कटप्रुभ्याम्	कटप्रुभ्यः
कटप्रुणः,कटप्रुवः	कटप्रुणोः,कटप्रुवोः	कटप्रूणाम्,[१]कटप्रुवाम्
कटप्रुणि,कटप्रुवि	कटप्रुणोः,कटप्रुवोः	कटप्रुषु
सं०हे कटप्रु, कटप्रो	हे कटप्रुणी[२]	हे कटप्रूणि[३]

[४]एवं तनभ्रू-सुभ्रूप्रभृतयः ।

अथ ऋकारान्ताः ।

[५]पुंसि कर्तृशब्दः -

[६]कर्ता	[७]कर्तारौ	कर्तारः
कर्तारम्	कर्तारौ	कर्तॄन्
कर्त्रा		
सं० हे कर्तः	हे कर्तारौ	हे कर्तारः

सर्वत्र पितृवत् ।

[८]स्त्रियां तु कर्त्री नदीवत् ।

नपुंसके-

[९]कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि
कर्तृ	कर्तृणी	कर्तृणि
कर्तृणा, कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
कर्तृणे, कर्त्रे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
कर्तृणः, कर्तुः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
कर्तृणः, कर्तुः	कर्तृणोः, कर्त्रोः	कर्तृणाम्

---

१. पा० कटप्राम् A.B.। २.३. कटप्रूनी A.B.।

४. पा० एवं सुभ्रूः C.।

५. कर्तृशब्दप्रभृतयः । कर्ता कर्तारौ कर्तारः इत्यादि धातृवत् A.B.।

६. आ सौ सिलोपश्च [२-१-६४ का०] सिलोप, ऋ आ A.।

७. धातोस्तृशब्दस्यार् [२-१-६८ का०] इति आर् A.।

८. स्त्रियां तु नदादि [नदाद्यन्चिवाह्यन्स्यन्तृसखिनान्तेभ्य ई २-४-५० का०] सूत्रेण ईप्रत्यये कर्त्री नदीवत्। स्त्रियां तु स्त्रियां नृतोऽस्वस्रादेर्ङी [सि० २-४-१] कर्त्री नदीवत् C.।

९. C. प्रतौ प्रथमाया रूपाणि सन्ति शेषं पुंलिङ्गवत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्तृणि, कर्तरि	कर्तृणो, कर्त्रोः	कर्तृषु
सं०हे [1]कर्तः, [2]कर्तृ	हे कर्तृणी	हे कर्तृणि

[3]एवं तृजन्त-तृनन्त-पक्तृ-भोक्तृ-श्रोतृप्रभृतयः ।

सुमातृशब्दः पुंसि सुपितृवत् । स्त्रियां तु मातृवत् । नपुंसके तु नपुंसककर्तृवत् ।

★

अथ सर्वनामगणा लिख्यन्ते ।

सर्वः	सर्वौ	सर्वे
सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सं०हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

स्त्रियाम्-

सर्वा	सर्वे	सर्वाः
सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सं०हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

नपुंसके-

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

१. नास्ति B.। २. नास्ति A.।

३. पा० एवं पक्तृ-भोक्तृ-श्रोतृप्रभृतयः A.B. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वम् सर्वे सर्वाणि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[१]अकप्रत्ययेऽप्येवं यथा-

सर्वकः सर्वकौ०

[२]स्त्रियां तु-

सर्विका सर्विके सर्विकाः

इत्यादि स्त्रीलिङ्गे सर्वावत् ।

नपुंसके-

सर्वकम् सर्वके सर्वकाणि

सर्वकम् सर्वके सर्वकाणि

शेषं पुंलिङ्गवत् । एवं विश्वशब्दोऽपि ।

[३]उभशब्दो द्विवचनान्तः ।

उभौ उभौ उभाभ्याम् उभाभ्याम् उभाभ्याम् उभयोः उभयोः

[४]स्त्रियाम् - [५]उभे उभे शेषं पुंलिङ्गवत् ।

नपुंसके - उभे उभे शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[६]अकि-

[७]उभकौ उभकौ उभकाभ्याम् उभकाभ्याम् उभकाभ्याम् उभकयोः उभकयोः

[८]स्त्रियां तु- उभके उभिके उभिकाभ्याम्३ उभिकयोः उभिकयोः

नपुंसके तु- उभके उभके शेषं पुंलिङ्गवत् ।

---

१. A.B. प्रतौ एषः पाठः, एवं रूपाणि च न सन्ति ।

२. स्त्रियां तु अकप्रत्यये वकाराकारस्येकारे कृते [२-२-४५ का० सूत्रेण] A.B.। C. प्रतौ स्त्रियां सर्विका सर्विके, नपुंसके सर्वकम् ।

३. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

४. A.B.C. प्रतौ नास्ति ।

५. A.B. प्रतौ रूपाणि न सन्ति ।

६. A.B. प्रतौ नास्ति ।

७. उभकौ उभवत् C.।

८. A.B. प्रतौ रूपाणि न सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[उभयशब्दः ।]

[1]उभयः उभयौ उभये

इत्यादि सर्ववत् ।

[2]स्त्रियां तु उभयी नदीवत् ।

नपुंसके सर्ववत् ।

[3]अकि-

[4]पुंसि- उभयकः सर्वकवत्

[5]स्त्रियां तु- उभयकी नदीवत् ।

[6]नपुंसके तु- उभयकम् उभयके उभयकानि

उभयकम् उभयके उभयकानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[अन्यशब्दः ।]

पुंस-	[7]अन्यः	अन्यौ	अन्ये	सर्ववत् ।
स्त्रियाम्-	अन्या	अन्ये	अन्याः	सर्वावत् ।
नपुंसके-	[8]अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	
	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि	

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[9]अकि-

पुंसि-	[10]अन्यकः	अन्यकौ	अन्यके	सर्वकवत् ।
स्त्रियाम्-	अन्यिका	अन्यिके	अन्यिकाः	सर्विकावत् ।
नपुंसके-	अन्यकत्-द्	अन्यके	अन्यकानि	
	अन्यकत्-द्	अन्यके	अन्यकानि	

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

---

१. उभयः सर्ववत् C.। २. स्त्रियां तु ईप्रत्यये उभयी नदीवत् A.B.।

३.४.५. A.B. प्रतौ एषः समस्तः पाठो नास्ति । ६. क्लीबे उभयकं सर्ववत् C.।

७. अन्यः सर्ववत्, स्त्रियां सर्वावत् C.।

८. अन्यादेस्तु तुः [२-२-८ का०] तकारागमः A.।

९. पा० के प्रत्यये A.B.।

१०. अन्यकः, अन्यका C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]एवम्-अन्यतर-इतर-कतर-कतम-यतर-यतम-ततर-ततम-एकतर-एकतम-[२]डतर-डतमौ प्रत्ययौ, अथ तदन्ताः शब्दाः गृह्यन्ते ।

[३]यथा- कतरः, कतमः, यतरः, यतमः, ततरः, ततमः, एकतरः, सर्वः, सर्वेव ।

नपुंसके- [४]एकतरम् एकतरे एकतराणि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

त्वशब्दः सर्ववत् ।

नेमः नेमौ [५]नेमे,नेमाः

शेषं सर्ववत् ।

[६]अक्प्रत्यये- नेमकः नेमकौ नेमकाः

[७]सिमः सिमौ सिमे, सिमाः । सर्ववत् ।

[८]वृतकरणं पूर्वादिगणः समासः ।

[९]पूर्वः	पूर्वौ	[१०]पूर्वे, पूर्वाः
पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्
पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
[११]पूर्वस्मात्,पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
[१२]पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

---

१. पा० एवम्-अन्यतर-इतरौ । डतर-डतमौ प्रत्ययौ, तदन्ता अदन्ताः शब्दाः गृह्यन्ते C.।

२. तथा च सूत्रम्-यत्तदेतद्भ्यो द्वयोरेकस्य निर्द्धारणे डतरो वा जातौ बहूनां डतमः A.B.।

३. A.B. प्रतौ एषः सर्वोऽपि पाठो नास्ति ।

४. पञ्चतोऽन्यादेरनेकतरस्य दः [सि० १-४-५८] A.B.C. । C. प्रतौ एकतरमिति एकमेव रूपमस्ति ।

५. अल्पादिगणमध्यत्वाद् नेमसमसिमअर्द्धपूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणां जसि विकल्पः स्यात् । यथा-नेमे, नेमाः, समे, समाः, अर्द्धे अर्द्धाः, पूर्वे,पूर्वाः A.B.।
नेमार्द्धप्रथम [चरम-तयायाल्पकतिपयस्य वा सि० १-४-१०] जस ईर्वा C.।

६. नेमकः C.।

७. समसिमौ सर्वः सर्वा सर्वम् C.।

८. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

९. A.B. प्रतौ पूर्वशब्दस्य रूपाण्येव न सन्ति ।

१०.११.१२. नवभ्यः० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकि- पूर्वकः स्त्रियाम्-पूर्विका, नपुंसके- सर्वकवत् ।
एवं पर-अवर-दक्षिण-उत्तर-अपर-अधर-स्व-अन्तरशब्दाः ।

[त्यद्शब्दः]

[1]स्यः	त्यौ	त्ये
त्यम्	त्यौ	त्यान्
त्येन	त्याभ्याम्	त्यैः
त्यस्मै	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
त्यस्मात्	त्याभ्याम्	त्येभ्यः
त्यस्य	त्ययोः	त्येषाम्
त्यस्मिन्	त्ययोः	त्येषु

स्त्रियाम्- स्या त्ये त्याः सर्वावत् ।
नपुंसके- त्यत्-त्यद् त्ये त्यानि, शेष पुंलिङ्गवत् ।
[2]अकि-

पुंसि-	[3]त्यकः	त्यकौ	त्यके	
	त्यकम्	त्यकौ	त्यकान्	सर्ववत् ।
स्त्रियाम्-	[4]त्यिका	त्यिके	त्यिकाः	सर्वावत् ।
नपुंसके-	त्यकत्,त्यकद्	त्यके	त्यकानि	
	त्यकत्,त्यकद्	त्यके	त्यकानि	शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[5]एवं तदपि, यदपि ।

[अदस्शब्दः]

[6]असौ	[7]अमू	[8]अमी

१. A.B. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्चैव रूपाणि सन्ति ।
२. पा० केप्रत्यये A.B.।
३. C. प्रतौ प्रथमाया एव रूपाणि सन्ति ।
४. पा० स्यका A.B.C.।
५. पा० त्यद्वत् तद्यद्ज्ञेयौ A.B.।
६. सौ सः [२-३-३२ का०] द स, सावौ सिलोपश्च [२-३-४० का०] सिलोप, अन्तिम औ A.। अदसो दः सेस्तु डौ [सि० २-१-४३] दकारस्य सकार अनइ डौ B.।
७. उत्वं मात् [२-३-४१ का०] उत्वम् A.।
८. एद् बहुत्वे त्वी [२-३-४२ का०] एकार ईकार A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]अमुम्	अमू	[२]अमून्
[३]अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
[४]अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
[५]अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
[६]अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रियाम्-

असौ	अमू	अमूः
अमूम्	अमू	अमूः
[७]अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
[८]अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

नपुंसके-

अदः	[९]अमू	अमूनि
अदः	[१०]अमू	[११]अमूनि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

---

१. अग्नेरमोऽकारः [२-१-५० का०] A. ।
२. शसोऽकारः सश्च नोऽस्त्रियाम् [२-१-५२ का०] A.।
३. टा ना [अदोऽमुश्च २-१-५४ का०] A.।
४. अदसः पदे मः [२-२-४५ का०] दस्य म, स्मै सर्वनाम्नः [२-१-२५ का०] A.।
५. ङसि स्मात् [२-१-२६ का०] A.। ६. ङिः स्मिन् [२-१-२७ का०] A.।
७. टौसोरे [२-१-३८ का०] ।
८. सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च [२-१-४३ का०] स्यै, स्यास्, स्यास्, स्याम् ।
९.१०. पा० अमुनी । नामिनः स्वरे [२-२-१२ का०] ।
११. घुट्स्वराद् घुटि नुः [२-२-११ का०] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अकि-

असुकः, [2]असकौ	अमुकौ	अमुके
अमुकम्	अमुकौ	अमुकान्
अमुकेन	अमुकाभ्याम्	अमुकैः
अमुकस्मै	अमुकाभ्याम्	अमुकेभ्यः
अमुकस्मात्	अमुकाभ्याम्	अमुकेभ्यः
अमुकस्य	अमुकयोः	अमुकेषाम्
अमुकस्मिन्	अमुकयोः	अमुकेषु

स्त्रियाम्-

असुका, असकौ	अमुके	अमुकाः
अमुकाम्,	सर्विकावत् ।	

नपुंसके-

अदकः, अमुकम्	अमुके	अमुकानि
अदकः, अमुकम्	अमुके	अमुकानि
[3]अदकः	अदके	अदकानि
अदकः	अदके	अदकानि
शेषं पुंलिङ्गवत् ।		

[एतद्शब्दः]

एषः	एतौ	एते
एतम्, [4]एनम्	एतौ, [5]एनौ	एतान्, [6]एनान्
एतेन, [7]एनेन	एताभ्याम्	एतैः

---

१. असुको वा निपात इति सौ परे त्रिलिङ्गेषु विकल्पेन असुक आदेशः A.B. ।
अकि- असुकः असुकौ अमुकौ अमुके शेषं सर्वकवत् C.।

२. पा० असुकौ A.B.C.।

३. C. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

४. त्यदामेनदेतदो [द्वितीया-टौस्यवृत्त्यन्ते सि० २-१-३३] एन A.।
एतस्य चान्वादेशे [द्वितीयायां चैन २-३-३७ का०] एन आ० A.।

५.६.७. C. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
एतस्य	एतयोः, [1]एनयोः	एतेषाम्
एतस्मिन्	एतयोः, [2]एनयोः	एतेषु

[स्त्रियाम्-]

[3]एषा	एते	एताः
एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः
एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
एतस्यैः	एताभ्याम्	एताभ्यः
एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

नपुंसके-

एतद्, एतत्	एते	एतानि
एतद्, एतत्	एते	एतानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[अकि]

[4]एषकः	एतकौ	एतके
एतकम्, एनम्	एतकौ, एनौ	एतकान्, एनान्
एतकेन, एनेन	एतकाभ्याम्	एतकैः
एतकस्मै	एतकाभ्याम्	एतकेभ्यः
एतकस्मात्	एतकाभ्याम्	एतकेभ्यः
एतकस्य	एतकयोः, एनयोः	एतकेषाम्
एतकस्मिन्	एतकयोः, एनयोः	एतकेषु

१.२. C. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

३. C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि तथा द्वितीयायाः एकवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

४. एषकः एतकौ सर्वकवत्, परं द्वितीया-टा-ओसि विशेषः एतकम् एनम्, एतकौ एनौ, एतकान् एनान्, एतकेन एनेन, एतकयोः एनयोः C. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियाम्-

[१]एषिका	एतिके	एतिकाः
एतिकाम्, एनाम्	एतिके, एने	एतिकाः, एनाः

इत्यादि सर्विकावत् ।

नपुंसके-

एतकत्	एतके	एतकानि
एतकत्, एनत्	एतके, एने	एतकानि, एनानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[इदम्शब्दः]

[२]अयम्	[३]इमौ	इमे
इमम्, [४]एनम्	इमौ, [५]एनौ	इमान्, [६]एनान्
[७]अनेन, [८]एनेन	[९]आभ्याम्	एभिः
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
अस्य	अनयोः, [१०]एनयोः	एषाम्
अस्मिन्	अनयोः,[११]एनयोः	एषु

स्त्रियाम्-

[१२]इयम्	इमे	इमाः
इमाम्, एनाम्[१३]	इमे, एने[१४]	इमाः, एनाः[१५]
अनया, एनया[१६]	आभ्याम्	आभिः
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः

---

१. एषिका, एतिके सर्विकावत्, परमत्राऽपि विशेषः C.।

२. इदमियमयम् पुंसि [२-३-३४ का०] ।

३. दोऽक्ष्वेर्मः [२-३-३१ का०] दकार म ।

४.५.६.८.१०.११.१३.१४.१५.१६. प्रतौ एतानि रूपाणि न ।

७. टौसोरन [२-३-३६ का०] ।

९. अद् व्यञ्जनेऽनक् [२-३-३५ का०], अकारो दीर्घं [घोषवति २-१-१४ का०] ।

१२. इदमियमयम् पुंसि [२-३-३४ का०] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
अस्याः	अनयोः, एनयोः[१]	आसाम्
अस्याम्	अनयोः, एनयोः[२]	आसु

नपुंसके-

इदम्	इमे	इमानि
इदम्	इमे	इमानि

शेषं पुंलिङ्गवत्[३] ।

अकि-

[४]अयकम्	इमकौ	इमके
इमकम्, एनम्	इमकौ, एनौ	इमकान्, एनान्
इमकेन, एनेन	इमकाभ्याम्	इमकैः
इमकस्मै	इमकाभ्याम्	इमकेभ्यः
इमकस्मात्	इमकाभ्याम्	इमकेभ्यः
इमकस्य	इमकयोः, एनयोः	इमकेषाम्
इमकस्मिन्	इमकयोः, एनयोः	इमकेषु

स्त्रियाम्-

[५]इयकम्	इमके	इमिकाः
इमकाम्, एनाम्	इमिके, एने	इमिकाः एनाः
इमिकया, एनया	इमिकाभ्याम्	इमिकाभिः
इमिकस्यै	इमिकाभ्याम्	इमिकाभ्यः
इमिकस्याः	इमिकाभ्याम्	इमिकाभ्यः
इमिकस्याः	इमिकयोः, एनयोः	इमिकासाम्
इमिकस्याम्	इमिकयोः, एनयोः	इमिकासु

१.२. प्रतौ एतद् रूपं नास्ति ।

३. अस्याऽपि शब्दस्य द्वितीया-टा-ओसि एनत् सर्वत्र स्यात् C.।

४. A.B. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाः तृतीयायाश्च रूपाणि सन्ति ।

५. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च सर्वाणि तृतीयायाः एकद्विवचनयोस्तथा सप्तम्याः द्विवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नपुंसके–

इमकम्	इमके	इमकानि
इमकम्, एनम्	इमके, एने	इमकानि, एनानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[किम्शब्दः]

[१]कः	कौ	के
कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु

स्त्रियाम्–

का	के	काः
काम्	के	काः
कया	काभ्याम्	काभिः
कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
कस्याः	कयोः	कासाम्
कस्याम्	कयोः	कासु

नपुंसके–

किम्	के	कानि
किम्	के	कानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

अक्यप्येवं साकस्य कादेशात् ।

---

३. A.B. प्रतौ किम्शब्दस्य रूपाण्येव न सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकशब्दः-

[1]एकः एकम् एकेन एकस्मै एकस्मात् एकस्य एकस्मिन्

स्त्रियाम्-

एका एकाम् एकया एकस्यै एकस्याः एकस्याः एकस्याम्

नपुंसके-

एकम् एकम् शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[2]अकि-

एककः एककम् एककेन एककस्मै एककस्मात् एककस्य एककस्मिन्

[द्विशब्दः-]

द्वौ द्वौ द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः

स्त्रियाम्-

[3]द्वे द्वे द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः

नपुंसके-

[4]द्वे द्वे द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः

अकि-

[5]द्वकौ द्वकौ द्वकाभ्याम् द्वकाभ्याम् द्वकाभ्याम् द्वकयोः द्वकयोः

स्त्रियाम्-

[6]द्विके द्विके द्विकाभ्याम् द्विकाभ्याम् द्विकाभ्याम् द्विकयोः द्विकयोः

नपुंसके-

[7]द्वके द्वके द्वकाभ्याम् द्वकाभ्याम् द्वकाभ्याम् द्वकयोः द्वकयोः

[त्रिशब्दः]

[8]त्रयः त्रीन् त्रिभिः त्रिभ्यः त्रिभ्यः [9]त्रयाणाम् त्रिषु

---

१. C. प्रतौ एक शब्दस्य रूपाणि प्रत्यन्ते वर्तन्ते । २. C. प्रतौ रूपाणि न सन्ति ।

३. द्वे द्वे शेषं पूर्ववत् A.B.। ४. द्वे द्वे शेषं पूर्ववत् A.। B.प्रतौ रूपाणि न सन्ति ।

५.६.७. A.B. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

८. इरेदुरोज्जसि एकार A. । C. प्रतौ त्रित आरभ्याऽष्टपर्यन्तं सङ्ख्यावाचकशब्दानां रूपाणि प्रत्यन्ते वर्तन्ते ।

९. पा० त्रियाणाम् A.B.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियाम्-

[1]तिस्रः तिस्रः तिसृभिः तिसृभ्यः तिसृभ्यः तिसृणाम् तिसृषु

नपुंसके-

त्रीणि त्रीणि शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[चतुर्शब्दः]

चत्वारः चतुरः चतुर्भिः चतुर्भ्यः चतुर्भ्यः चतुर्णाम् चतुर्षु

स्त्रियाम्-

[2]चतस्रः चतस्रः चतसृभिः चतसृभ्यः चतसृभ्यः [3]चतसृणाम् चतसृषु

नपुंसके-

चत्वारि चत्वारि शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[पञ्चन्शब्दः]

[4]पञ्च पञ्च पञ्चभिः पञ्चभ्यः पञ्चभ्यः पञ्चानाम् पञ्चसु

[षष्शब्दः]

षट् षट् षड्भिः षड्भ्यः षड्भ्यः षण्णाम् षट्सु

[सप्तन्शब्दः]

सप्त सप्त सप्तभिः सप्तभ्यः सप्तभ्यः सप्तानाम् सप्तसु

[अष्टन्शब्दः-]

प्र०द्वि० [5]अष्टौ, अष्ट	तृ०अष्टाभिः, अष्टभिः	च०अष्टाभ्यः,अष्टभ्यः	
पं० अष्टाभ्यः,अष्टभ्यः	ष० अष्टानाम्	स० अष्टासु, अष्टसु	

१. त्रिचतुरोः स्त्रियां [तिसृ चतसृ विभक्तौ २-३-२५ का०] स्त्रियां तिसृ आदेशः, तौ रं स्वरे [२-३-२६ का०] रत्वम् A.।

२. त्रिचतुरोः स्त्रियां [तिसृ चतसृ विभक्तौ २-३-२५ का०] स्त्रियां चतसृ आदेशः, तौ रं स्वरे [२-३-२६ का०] रत्वम् A.।

३. पा० चतुर्णाम् ।

४. कतेश्च जस्शसोर्लुक् [२-१-७६ का०] जस्-शस्-लोप, लिङ्गान्तनकारस्य [२-३-५६ का०] न लोप ।

५. औ तस्माज्जस्शसोः [२-३-२१ का०] जस् शस् लुप् ।

६. अष्टनः सर्वासु [२-३-२० का०] अन्त आत्वम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पञ्चदशन्, षोडशन्, सप्तदशन्, [१]अष्टादशन्- एते सङ्ख्यावाचकाः पञ्चन्वत् । [२]नदादेराकृतिगणत्वात् स्त्रीलिङ्गे नदीवत् ।

[युष्मद्शब्दः-]

[३]त्वम्	[४]युवाम्	[५]यूयम्
त्वाम्, त्वा[६]	युवाम्, वाम्[७]	युष्मान्, वः[८]
त्वया	[९]युवाभ्याम्	युष्माभिः
[१०]तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	[११]युष्मभ्यम्, वः
[१२]त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
[१३]तव, ते	युवयोः, वाम्	[१४]युष्माकम्, वः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु

[१५]अकि-

त्वकम्	युवकाम्	यूयकम्
त्वकाम्, त्वा	युवकाम्, वाम्	युष्मकान्, वः
त्वयका	युवकाभ्याम्	युष्मकाभिः
तुभ्यकम्, ते	युवकाभ्याम्, वाम्	युष्मकभ्यम्, वः
त्वकत्	युवकाभ्याम्	युष्मकत्

१. C. प्रतौ अष्टादशन्शब्दाः ।
२. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति । नदाद्यन्विवाह्यन्स्यन्तृसखिनान्तेभ्य ई [२-४-५० का०]
३. त्वमहम् सौ सविभक्त्योः [२-३-१० का०] A.।
४. अमौ चाम् [२-३-८ का०] A.। ५. यूयं वयं जसि [२-३-११ का०] A.।
६. त्वन्मदोरेकत्वे ते मे त्वा मा [तु द्वितीयायाम् २-३-३ का०] A.।
७. वामनौ द्वित्वे [२-३-२ का०] A.।
८. युष्मदस्मदोः पदं पदात्पष्ठी चतुर्थीद्वितीयासु वस्नसौ [२-३-१ का०] A.।
९. युवावौ द्विवाचिषु [२-३-७ का०] A.। १०. तुभ्यम् मह्यम् ङयि [२-३-१२ का०] A.।
११. भ्यसभ्यम् [२-३-१५ का०] A.। १२. अत् पञ्चम्य [द्वित्वे २-३-१४ का०] A.।
१३. तव मम ङसि [२-३-१३ का०] A.। १४. सामाकम् [२-३-१६ का०] A.।
१५. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च रूपाणि सन्ति । प्रतौ अत्राऽस्मद्शब्दस्य रूपाणि सन्ति, ततः परमेतानि रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तवक, ते	युवकयोः, वाम्	युष्माककम्, वः
त्वयकि	युवकयोः	युष्मकासु
[१]अतित्वम्	अतित्वाम्	अतियूयम्
अतित्वाम्	अतित्वाम्	अतित्वान्
अतित्वया	अतित्वाभ्याम्	अतित्वाभिः
अतितुभ्यम्	अतित्वाभ्याम्	अतित्वभ्यम्
अतित्वत्	अतित्वाभ्याम्	अतित्वत्
अतितव	अतित्वयोः	अतित्वयाम्
अतित्वयि	अतित्वयोः	अतित्वासु
[२]अतित्वम्	अतियुवाम्	अतियूयम्
अतियुवाम्	अतियुवाम्	अतियुवान्
अतियुवया	अतियुवाभ्याम्	अतियुवाभिः
अतितुभ्यम्	अतियुवाभ्याम्	अतियुवभ्यम्
अतियुवत्	अतियुवाभ्याम्	अतियुवत्
अतितव	अतियुवयोः	अतियुवयाम्
अतियुवयि	अतियुवयोः	अतियुवासु
[३]अतित्वम्	अतियुष्मान्	अतियूयम्
अतियुष्माम्	अतियुष्मान्	अतियुष्मान्
अतियुष्मया	अतियुष्माभ्याम्	अतियुष्माभिः
अतितुभ्यम्	अतियुष्माभ्याम्	अतियुष्मभ्यम्
अतियुष्मत्	अतियुष्माभ्याम्	अतियुष्मत्
अतितव	अतियुष्मयोः	अतियुष्मयाम्
अतियुष्मयि	अतियुष्मयोः	अतियुष्मासु

[अस्मद्शब्दः-]

अहम्	आवाम्	वयम्
माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
मया	आवाभ्याम्	[४]अस्माभिः

१.२.३. C. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति । ४. आवाभिः C. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
मयि	आवयोः	अस्मासु

अकि–

[१]अहकम्	आवकाम्	वयकम्
ममकम्, मा	आवकाम्, नौ	अस्मकान्, नः
मयका	आवकाभ्याम्	अस्मकाभिः
मह्यकम्, मे	आवकाभ्याम्, नौ	अस्मकभ्यम्, नः
मकत्	आवकाभ्याम्	अस्मकत्
ममक, मे	आवकयोः, नौ	अस्माककम्, नः
मयकि	आवकयोः	अस्मकासु
[२]अत्यहम्	अतिमाम्	अतिवयम्
अतिमान्	अतिमाम्	अतिमान्
अतिमया	अतिमाभ्याम्	अतिमाभिः
अतिमह्यम्	अतिमाभ्याम्	अतिमभ्यम्
अतिमत्	अतिमाभ्याम्	अतिमत्
अतिमम	अतिमयोः	अतिमयाम्
अतिमयि	अतिमयोः	अतिमासु
[३]अत्यहम्	अत्यावाम्	[४]अतिवयम्
अत्यावाम्	अत्यावाम्	अत्यावान्
अत्यावया	अत्यावाभ्याम्	अत्यावाभिः
अतिमह्यम्	अत्यावाभ्यम्	अत्यावभ्यम्
अत्यावत्	अत्यावाभ्यम्	अत्यावत्
अतिमम	अत्यावयोः	अत्यावयाम्
अत्यावयि	अत्यावयोः	अत्यस्मासु

१. C. प्रतौ प्रथमायाः द्वितीयायाश्च रूपाणि सन्ति ।

२.३. C. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति ।

४. पा० अत्यावयम् A.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अत्यहम्	अत्यस्माम्	अतिवयम्
अत्यस्माम्	अत्यस्माम्	अत्यस्मान्
अत्यस्मया	अत्यस्माभ्याम्	अत्यस्माभिः
[2]अतिमह्यम्	अत्यस्माभ्याम्	अत्यस्मभ्यम्
अत्यस्मत्	अत्यस्माभ्याम्	अत्यस्मत्
अतिमम	अत्यस्मयोः	अत्यस्मयाम्
अत्यस्मयि	अत्यस्मयोः	अत्यस्मासु

[भवत्शब्दः-]

[3]भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
भवतः	भवतोः	भवताम्
भवति	भवतोः	भवत्सु
सं०हे भवत्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

स्त्रियां तु भवती, नदीवत् ।

नपुंसके तु-	भवत्, भवद्	भवती	भवन्ति
	भवत्, भवद्	भवती	भवन्ति

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[अकि-]

[4]भवकान्	भवकन्तौ	भवकन्तः
भवकन्तम्	भवकन्तौ	भवकतः
भवकता	भवकद्भ्याम्	भवकद्भिः
भवकते	भवकद्भ्याम्	भवकद्भ्यः
भवकतः	भवकद्भ्याम्	भवकद्भ्यः

१. C. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति । २. पा० अत्यमह्यम् A.B.।
३. A.B. प्रतौ भवत्छब्दस्य रूपाणि न सन्ति । ४. C. प्रतौ प्रथमायाः रूपाणि सन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवकतः	भवकतोः	भवकताम्
भवकति	भवकतोः	भवकत्सु

स्त्रियाम्[१]-भवकती, नदीवत् ।

नपुंसके-	भवकत्, भवकद्	भवकती	भवकन्ति
	भवकत्, भवकद्	भवकती	भवकन्ति

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[२]अल्पस्तयायौ प्रथमश्चाऽर्द्धः कतिपयस्तथा ।
नेमश्चरमपूर्वादिश्चाऽल्पादेः कथितो गणः ॥
सङ्ख्ययोः-

[३]तय-अयौ प्रत्ययौ, अतस्तदन्ताः शब्दाः गृह्यन्ते ।

[४]द्वौ अवयवौ यस्य ययोः येषाम्, [५]यस्मिन् ययोः येषु असौ-

द्वितयः	द्वितयौ	द्वितये, द्वितयाः[६]
द्वितयम्		

शेषं देववत् ।

त्रयो अवयवाः यस्य ययोः येषाम् असौ-

[७]त्रितयः	त्रितयौ	त्रितये, त्रितयाः

शेषं वृक्षवत् ।

चत्वारो अवयवाः यस्य ययोः येषाम् असौ-

चतुष्टयः	चतुष्टयौ	चतुष्टये, चतुष्टयाः

[८]शेषं वृक्षवत् ।

[९]एवं पञ्चतयः षष्टतयः इत्यादयः शब्दाः प्रयोक्तव्याः ।

१. पा० भवकी नदीवत् A.B.। २. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।
३. A.B. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।
४. द्वित्रिभ्यामयट् वा [सि० ७-१-१५२] A.B. ।
५. C. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।
६. द्वितयाः शेषं सर्ववत् A.। द्वितयाः शेषं पुंलिङ्गवत् B.।
७. C. प्रतौ प्रथमायाः एकवचनस्यैव रूपमस्ति ।
८. देववत् C.। ९. A.B. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]द्वौ अवयवौ यस्याऽसौ द्वयः ।

द्वयः	द्वयौ	द्वये, द्वयाः

शेषं देववत् ।

[त्रयो अवयवाः यस्याऽसौ त्रयः ।]

[2]त्रयः	त्रयौ	त्रये, त्रयाः

शेषं देववत् ।

[3]स्त्रियां तु- द्वितयी, त्रितयी, चतुष्टयी, पञ्चतयी, द्वयी, त्रयी - नदीवत् ।

[4]नपुंसके तु- द्वितयम्, त्रितयम्, चतुष्टयम्, पञ्चतयम्, षट्तयम्, द्वयम्, त्रयम्, कुण्डवत् ।

[5]द्वितीयः	द्वितीयौ	द्वितीयाः
द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्
द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयैः
[6]द्वितीयस्मै, द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
द्वितीयस्मात्, द्वितीयात्	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
द्वितीयस्य	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
द्वितीयस्मिन्, द्वितीये	द्वितीययोः	द्वितीयेषु

[7]स्त्रियाम्-द्वितीया, मालावत्, ङित्कार्यं च ।

द्वितीयस्यै, द्वितीयायै	द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः
द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः	द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्

[नपुंसके-][8] द्वितीयम् कुण्डवत् ।

[9]एवं तृतीयः, तृतीया, तृतीयम् ।

---

१. A.B. प्रतौ द्वौ... देववत् - इति सर्वोऽपि पाठो नास्ति ।
द्वित्रिभ्यामयट् वा [सि० ७-१-१५२] इत्यनेन अयट् ।

२. A.B. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

३. A.B.प्रतौ एषः पाठो नास्ति । अणमेयेकण्नञ्स्नञ्टिताम् [सि० २-४-२०] इति ङीप्रत्यये C.।

४. A.B. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

५. A.B. प्रतौ रूपाणि न सन्ति । द्वेस्तीयः [सि० ७-१-१६५] ।

६. तीयं ङित्कार्ये वा [सि० १-४-१४] C.। ७.८.९. A.B. प्रतौ एषः सर्वोऽपि पाठो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[असुशब्दः-]

[1]असवः असून् असुभिः असुभ्यः असुभ्यः असूनाम् असुषु हे असवः

[प्राणशब्दः-]

[2]प्राणाः प्राणान् प्राणैः प्राणेभ्यः प्राणेभ्यः प्राणानाम् प्राणेषु हे प्राणाः एवं दारा-लाजा शब्दाः ।

[क्रोष्टुशब्दः-]

[3]क्रोष्टा	[4]क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टॄन्, क्रोष्टून्
[5]क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टॄणाम्, क्रोष्टूनाम्
क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु
सं० हे क्रोष्टः	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः

स्त्रियाम्-

क्रोष्ट्री	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्र्यः
क्रोष्ट्रीम्	क्रोष्ट्र्यौ	क्रोष्ट्रीः
क्रोष्ट्र्या	कोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभिः
कोष्ट्र्यै	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्रीभ्याम्	क्रोष्ट्रीभ्यः
क्रोष्ट्र्याः	क्रोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीणाम्
क्रोष्ट्र्याम्	कोष्ट्र्योः	क्रोष्ट्रीषु
सं० हे क्रोष्ट्रि	हे क्रोष्ट्र्यौ	हे क्रोष्ट्र्यः

नपुंसके-

क्रोष्टु	क्रोष्टुनी	क्रोष्टूनि

१.२. A.B. प्रतौ एतानि रूपाणि न सन्ति । ३. प्रतौ त्रिष्वपि लिङ्गेषु रूपाणि न सन्ति ।
४. कुशस्तुनस्तृच् पुंसि [सि० १-४-९१] तृच् आदेशः ।
५. टादौ स्वरे वा [सि० १-४-९२] A. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोष्टु	क्रोष्टुनी	क्रोष्टूनि
[१]क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
क्रोष्टुने	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुनः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टुनः	क्रोष्टुनोः	क्रोष्टूनाम्
क्रोष्टुनि	क्रोष्टुनोः	क्रोष्टुषु
सं० हे क्रोष्टु	हे क्रोष्टुनी	हे क्रोष्टूनि

★

[२]अथ कारकशब्दाः प्रारभ्यन्ते ।

[३]कुम्भस्य समीपमिति उपकुम्भम् ।

उपकुम्भम्	उपकुम्भम्	उपकुम्भम्
उपकुम्भम्	उपकुम्भम्	उपकुम्भम्
[४]उपकुम्भम्, उपकुम्भेन	उपकुम्भम्, उपकुम्भाभ्याम्	उपकुम्भम्, उपकुम्भैः
उपकुम्भम्	उपकुम्भम्	उपकुम्भम्
[५]उपकुम्भात्	उपकुम्भाभ्याम्	उपकुम्भेभ्यः
उपकुम्भम्	उपकुम्भम्	उपकुम्भम्
[६]उपकुम्भम्, उपकुम्भे	उपकुम्भम्, उपकुम्भयोः	उपकुम्भम्, उपकुम्भेषु
सं० हे उपकुम्भम्	हे उपकुम्भम्	हे उपकुम्भम्

[७]उपनदि - एवं सर्वत्र (२१) ।

एवमुपवधु-उपकर्तृ-स्वर्-प्रातर्-वाह्-अह - अव्ययस्य सर्वा विभक्तयो लुप्यन्ते ।

---

१. A. प्रतौ तृ० ए. क्रोष्ट्वा, च० ए. क्रोष्टवे, पं० ष० ए. क्रोष्टोः, ष० स० द्वि० क्रोष्ट्वोः, स० ए. क्रोष्टौ, क्रोष्टरि इत्येतानि रूपाण्यपि सन्ति । B. प्रतौ तृ० ए. क्रोष्ट्रा, च० ए. क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे, पं० ष० ए. क्रोष्टुः, क्रोष्टोः, ष० स० द्वि. क्रोष्ट्वोः, स० ए. क्रोष्टरि, क्रोष्टौ इत्येतानि रूपाण्यपि सन्ति ।

२.३. A.B. प्रतौ एषः पाठो नास्ति ।

४. वा तृतीयासप्तम्योः [२-४-२ का०] A. । वा तृतीयायाः [सि० ३-२-३] C.।

५. पा० उपकुम्भम्, उपकुम्भात् । अमव्ययीभावस्याऽतोऽपञ्चम्याः [सि० ३-२-२] C.।

६. वा तृतीयासप्तम्योः [२-४-२ का०] । सप्तम्या वा [सि० ३-२-४] C.।

७. उपनदि...लुप्यन्ते इति सर्वोऽपि पाठो नास्ति । अनतो लुप् [सि० १-४-५९] C.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]पाञ्चालः	पाञ्चालौ	[२]पञ्चालाः
पाञ्चालम्	पाञ्चालौ	पञ्चालान्
पाञ्चालेन	पाञ्चालाभ्याम्	पञ्चालैः
पाञ्चालाय	पाञ्चालाभ्याम्	पञ्चालेभ्यः
पाञ्चालात्	पाञ्चालाभ्याम्	पञ्चालेभ्यः
पाञ्चालस्य	पाञ्चालयोः	पञ्चालानाम्
पाञ्चाले	पाञ्चालयोः	पञ्चालेषु
सं० हे पाञ्चाल	हे पाञ्चालौ	हे पञ्चालाः

[३]स्त्रियाम्-

पाञ्चाली	पाञ्चाल्यौ	पाञ्चाल्यः

इत्यादि नदीवत् ।

नपुंसके-

पाञ्चालम्	पाञ्चाले	पञ्चालानि

शेषं पुंलिङ्गवत् ।

[४]एवं विदेहः आङ्गवाङ्गः मागधः कालिङ्गः सौरमसः कान्यकुब्जः सर्वेऽपि देववत् ।

प्रात्यग्रथिः	प्रात्यग्रथी	[५]प्रत्यग्रथाः

---

१. C. प्रतौ प्रथमायाः सर्वाणि तथा द्वितीयायाः एकवचनस्य रूपाणि सन्ति ।

२. रूढानां बहुत्वेऽस्त्रियामपत्यप्रत्ययस्य सर्वत्र लोपो भवति A. । A.B. प्रतौ तु सर्वत्र पञ्चालः पञ्चालौ इत्येतादृशानि रूपाण्येव दृश्यन्ते । C. प्रतौ पाञ्चालाः इति रूपं दृश्यते ।

३. C. प्रतो स्त्रियाम्.... पुंलिङ्गवत्, इति सर्वोऽपि पाठो नास्ति । पूर्ववदत्राऽपि पञ्चालीरूपमेव दृश्यते A.B.।

४. विदेहः आङ्गवाङ्गः कलिङ्गमागधौ प्रत्यग्रन्थि-कालकूटि-अश्मकि-गार्ग्य-वात्स्य-यास्क-लाह्य-विद-और्व-आत्रेय-आङ्गिरस-कौत्स-वाशिष्ठ-गौतम-ऐक्ष्वाक-राघव-काकुत्स्थ-यादव-कौरव-पाण्डवा एते सर्वेऽपि लिङ्गत्रयेऽपि पञ्चालवद् ज्ञातव्याः । इति शब्दाः समाप्ताः A.B. । अत्र A.B. प्रतिः समाप्ता ।

C. प्रतौ इयं प्रशस्तिः वर्तते - संवत् १५४४ वर्षे भाद्रवा-सुदि-५ दिने श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीश्रीभुवनप्रभसूरिवा० पूर्णकलशस्वहस्तेन लिखितम् । शुभं भूयात् ।

५. रूढानां बहुत्वेऽपत्यप्रत्ययस्य सर्वत्र लोपो भवति । पा० प्रात्यग्रथाः इति रूपं वर्तते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रात्यग्रथिम्	प्रात्यग्रथी	[1]प्रत्यग्रथान्

मुनिवत् । बहुत्वे देववत् ।

सं० हे प्रात्यग्रथे	हे प्रात्यग्रथी	हे [2]प्रत्यग्रथाः

एवं कालकूटिः आश्मकिः प्रात्यग्रथिशब्दवत् ।

प्रियो वाङ्गो यस्य ययोः येषाम्- असौ

प्रियवाङ्गः	प्रियवाङ्गौ	प्रियवाङ्गः
प्रियवाङ्गम्	प्रियवाङ्गौ	प्रियवाङ्गान्
प्रियवाङ्गेन०		
सं० हे प्रियवाङ्ग	हे प्रियवाङ्गौ	हे प्रियवाङ्गाः

देववत् ।

अस्त्रियामिति किम् ?

कालिङ्गी	कालिङ्ग्यौ	कालिङ्ग्यः

नदीवत् ।

गर्गस्याऽपत्यानि-

गार्ग्यः	गार्ग्यौ	[3]गर्गाः
गार्ग्यम्	गार्ग्यौ	गर्गान्

देववत् ।

एवं वात्स्यः	वात्स्यौ	वत्साः

लह्यस्याऽपत्यानि शिवादेरण् [सि० ६-१-६०][4]

वैदः	वैदौ	विदाः
वैदम्	वैदौ	विदान्
और्वः	और्वौ	उर्वाः

सर्वत्र देववदामन्त्र्येऽपि ।

प्रिया गर्गा यस्का विदा यस्याऽसौ प्रियगर्गः, प्रिययस्कः, प्रियविदः ।
मध्येसमासम् (समासमध्ये) बहुत्वेऽपत्यप्रत्ययस्य लुग् स्यादेव । देवेव ।

१. पा० प्रात्यग्रथान् । २. पा० हे प्रात्यग्रथाः ।
३. बहुत्वेऽपत्यप्रत्ययलोपे । पा० गार्गाः । ४. पा० शिवादिभ्योऽण् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भृग्वत्र्यङ्गिरस्कुत्सवसिष्ठगोतमेभ्यश्च [२-४-७ का०] भृगोरपत्यानि,
ऋष्यन्धकः वृष्णिकुरुभ्योऽण् [ऋषिवृष्ण्यन्धककुरुभ्योऽण् सि० ६-१-६१]

भार्गवः	भार्गवौ	भृगवः[1]
भार्गवम्	भार्गवौ	भृगून् इत्यादि ।

अत्रेरपत्यानि- आत्रेयः आत्रेयौ [2]अत्रयः
आत्रेयम्०

अङ्गिरसः कुत्सस्य वशिष्ठस्य गोतमस्य चाऽपत्यानि-

आङ्गिरसः	आङ्गिरसौ	अङ्गिरसः
कौत्सः	कौत्सौ	[3]कुत्साः
वाशिष्ठः	वाशिष्ठौ	वशिष्ठाः
गौतमः	गौतमौ	गोतमाः

बहुत्वेऽपत्यप्रत्ययस्य सर्वेषु लुक्, शेषं देववत् ।
अस्त्रियामिति किम् ?-

भार्गवी	भार्गव्यौ	भार्गव्यः

नदीवत् । एवमन्येऽपि ।
कारकशब्दाः समाप्ताः ।

★

पाण्ड्यः	पाण्ड्यौ	पाण्डवः
पाण्ड्यम्	पाण्ड्यौ	पाण्डून्
ऐक्ष्वाकः	ऐक्ष्वाकौ	इक्ष्वाकवः
राघवः	राघवौ	[4]रघवः
राघवम्	राघवौ	रघून्०

बहुत्वे लुक्, शेषं देववत् ।

यादवः	यादवौ	यदवः
यादवम्	यादवौ	यदून्

१. बहुत्वे लुग् । २. लुपि ।
३. पा० कौत्साः । ४. पा० राघवः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यादवेन	यादवाभ्याम्	यदुभिः
यादवाय	यादवाभ्याम्	यदुभ्यः
यादवात्	यादवाभ्याम्	यदुभ्यः
यादवस्य	यादवयोः	यदूनाम्
यादवे	यादवयोः	यदुषु

एवमन्येऽपि सर्वे ।

★

अथ पूरणप्रत्ययान्ताः लिख्यन्ते ।

प्रथमः	प्रथमौ	प्रथमाः [प्रथमे]

देववत् ।

प्रथमा मालावत् । प्रथमं कुण्डवत् ।

एवं द्वितीयः । द्वेस्तीयः [सि० ७-१-१६५]

तृतीयः । त्रेस्तृ, च [सि० ७-१-१६६]

चतुर्थः । चतुरः थट् [सि० ७-१-१६३]

स्त्रियाम्-चतुर्थी । क्लीबे चतुर्थम् ।

एवं तुरीयः ।

पञ्चानां पूरणः पञ्चमः । नो मट् [सि० ७-१-१५९]

पञ्चमः	पञ्चमौ	पञ्चमाः

देववत् ।

स्त्रियां पञ्चमी नदीवत् । पञ्चमं वनवत् ।

षष्ठः	षष्ठौ	षष्ठाः ।
षष्ठी ।	षष्ठम् ।	
सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम् ।
अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम् ।
नवमः	नवमी	नवमम् ।
दशमः	दशमी ।	दशमम् ।
एकादशः	एकादशी ।	एकादशम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशः	द्वादशी ।	द्वादशम् ।
त्रयोदशः	त्रयोदशी ।	त्रयोदशम् ।
चतुर्दशः ।	चतुर्दशी ।	चतुर्दशम् ।
पञ्चदशः ।	पञ्चदशी ।	पञ्चदशम् ।
षोडशः ।	षोडशी ।	षोडशम् ।
सप्तदशः ।	सप्तदशी ।	सप्तदशम् ।
अष्टादशः ।	अष्टादशी ।	अष्टादशम् ।
एकोनु(न)विंशतितमः ।	एकानु(न)विंशतितमी ।	एकोनु(न)विंशतितम् ।
विंशतितमः	[विंशतितमी]	[विंशतितमम्]

विंशतेः पूरणः विंशः । त्रिंशतः पूरणः त्रिंशः ।

विंशः	विंशौ	विंशाः ।
विंशी	विंश्यौ	विंश्यः ।
विंशम्	विंशे	विंशानि ।

एवं–

त्रिंशः	त्रिंशी ।	त्रिंशम् ।
एकविंशतितमः ।	एकविंशतितमी ।	एकविंशतितमम् ।
एकविंशः ।	एकविंशी	एकविंशम् ।
द्वाविंशतितमः ।	द्वाविंशतितमी ।	द्वाविंशतितमम् ।
द्वाविंशः	[द्वाविंशी]	द्वाविंशम् ।
त्रयोविंशतितमः ।	त्रयोविंशतितमी ।	त्रयोविंशतितमम् ।
त्रयोविंशः	[त्रयोविंशी ।]	त्रयोविंशम्

एवं चतुर्विंशतितमः, चतुर्विंशः । पञ्चविंशतितमः, पञ्चविंशः ।
षड्विंशतितमः, षड्विंशः । सप्तविंशतितमः, सप्तविंशः ।
अष्टाविंशतितमः, अष्टाविंशः ।

पुंसि देववत् । स्त्रियां नदीवत् । क्लीबे वनवत् । समे शब्दाः ।

एकोनु(न)त्रिंशत्तमः ।	एकोनु(न)त्रिंशत्तमी ।	एकोनु(न)त्रिंशत्तमम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनत्रिंशः । एकोनत्रिंशी । एकोनत्रिंशम् ।
त्रिंशत्तमः । त्रिंशत्तमी । त्रिंशत्तमम् ।
त्रिंशः । त्रिंशी । त्रिंशम् ।
एकत्रिंशत्तमः, एकत्रिंशः । द्वात्रिंशत्तमः, द्वात्रिंशः ।
त्रयस्त्रिंशत्तमः । त्रयस्त्रिंशत्तमी त्रयस्त्रिंशत्तमम् ।
त्रयस्त्रिंशः । त्रयस्त्रिंशी । त्रयस्त्रिंशम् ।
एवं चतुस्त्रिंशत्तमः, चतुस्त्रिंशः । पञ्चत्रिंशत्तमः, पञ्चत्रिंशः ।
षट्त्रिंशत्तमः, षट्त्रिंशः । सप्तत्रिंशत्तमः, सप्तत्रिंशः ।
अष्टात्रिंशत्तमः, अष्टात्रिंशः । एकोनचत्वारिंशत्तमः, एकोनचत्वारिंशः ।
चत्वारिंशत्तमः, चत्वारिंशः । एकचत्वारिंशत्तमः, एकचत्वारिंशः ।
द्विचत्वारिंशत्तमः, द्विचत्वारिंशः । द्वाचत्वारिंशत्तमः, द्वाचत्वारिंशः ।
त्रिचत्वारिंशदादौ वाऽनेकविकल्पः-
त्रिचत्वारिंशत्तमः, त्रयश्चत्वारिंशत्तमः, त्रिचत्वारिंशः, त्रयश्चत्वारिंशः ।
चतुश्चत्वारिंशत्तमः, चतुश्चत्वारिंशः । पञ्चचत्वारिंशत्तमः, पञ्चचत्वारिंशः ।
षट्चत्वारिंशत्तमः, षट्चत्वारिंशः ।
सप्तचत्वारिंशत्तमः, अष्टचत्वारिंशः, अष्टाचत्वारिंशत्तमः, अष्टाचत्वारिंशः ।
एकोनपञ्चाशत्तमः, एकोनपञ्चाशः । पञ्चाशत्तमः, पञ्चाशः ।
एकपञ्चाशत्तमः, एकपञ्चाशः ।
द्विपञ्चाशत्तमः, द्विपञ्चाशः, द्वापञ्चाशत्तमः, द्वापञ्चाशः ।
त्रिपञ्चाशत्तमः, त्रिपञ्चाशः, त्रयःपञ्चाशत्तमः, त्रयःपञ्चाशः ।
चतुःपञ्चाशत्तमः, चतुःपञ्चाशः ।
पञ्चपञ्चाशत्तमः, पञ्चपञ्चाशः । षट्पञ्चाशत्तमः, षट्पञ्चाशः ।
अष्टपञ्चाशत्तमः, अष्टपञ्चाशः, अष्टापञ्चाशत्तमः, अष्टापञ्चाशः ।
एकोनषष्टितमः, एकोनषष्टः । [१]षष्टितमः, एकषष्टः ।
द्विषष्टितमः, द्विषष्टः, द्वाषष्टितमः, द्वाषष्टः ।
त्रिषष्टितमः, त्रिषष्टः, त्रयःषष्टितमः, त्रयःषष्टः ।
चतुःषष्टितमः, चतुःषष्टः । पञ्चषष्टितमः, पञ्चषष्टः ।

---

१. षष्ट्यादेरसङ्ख्यादेः [सि० ७-१-१५८]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्षष्टितमः, षट्षष्टः । सप्तषष्टितमः, सप्तषष्टः ।

अष्टषष्टितमः, अष्टषष्टः, अष्टाषष्टितमः, अष्टाषष्टः ।

एकोनसप्ततितमः, एकोनसप्ततः । सप्ततितमः ।

एकसप्ततितमः, एकसप्तः (प्ततः) ।

द्विसप्ततितमः, द्विसप्तः (प्ततः), द्वासप्ततितमः, द्वासप्तः (प्ततः) ।

त्रिसप्ततितमः, त्रिसप्तः (प्ततः), त्रयःसप्ततितमः, त्रयःसप्तः (प्ततः) ।

चतुःसप्ततितमः, चतुःसप्तः (प्ततः) । पञ्चसप्ततितमः, पञ्चसप्तः (प्ततः) ।

षट्सप्ततितमः, षट्सप्तः (प्ततः) । सप्तसप्ततितमः, सप्तसप्तः (प्ततः) ।

अष्टसप्ततितमः, अष्टसप्तः (प्ततः), अष्टासप्ततितमः, अष्टासप्तः (प्ततः) ।

एकोनाशीतितमः, एकोनाशीतः । द्व्यशीतितमः, द्व्यशीतः ।

त्र्यशीतितमः, त्र्यशीतः । चतुरशीतितमः, चतुरशीतः ।

पञ्चाशीतितमः, पञ्चाशीतः । षडशीतितमः, षडशीतः ।

सप्ताशीतितमः, सप्ताशीतः । एकोननवतितमः एकोननवतः ।

नवतितमः, नित्यं तमट् । एकनवतितमः, एकनवतः ।

द्विनवतितमः, द्विनवतः, द्वानवतितमः, द्वानवतः ।

त्रिनवतितमः, त्रिनवतः, त्रयोनवतितमः, त्रयोनवः (वतः) ।

चतुर्नवतितमः, चतुर्नवः (वतः) । पञ्चनवतितमः, पञ्चनवः (वतः) ।

षण्णवतितमः, षण्णवतः ।

सप्तनवतितमः, अष्टनवतः, अष्टानवतितमः, अष्टानवतः ।

नवनवतितमः, नवनतः (वतः) ।

एकशततमः । एकसहस्रतमः । एकलक्षतमः ।

एककोटितमः ।

एते सर्वेऽपि शब्दाः पुंसि देववत् । स्त्रियां नदीवत् । क्लीबे वनवत् । अथ सङ्ख्यावाचकाः शब्दाः लिख्यन्ते ।

★

नव नव नवभिः नवभ्यः नवभ्यः नवानाम् नवसु ।

एवं दश-एकादश-द्वादश-त्रयोदश-चतुर्दश-पञ्चदश-षोडश-सप्तदश-अष्टादशशब्दाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनविंशतिः	एकोनविंशतिम्
एकोनविंशत्या	एकोनविंशतये, एकोनविंशत्यै
एकोनविंशतेः, एकोनविंशत्याः	एकोनविंशतेः,एकोनविंशत्याः
एकोनविंशतौ, एकोनविंशत्याम् ।	

एवं विंशति-एकविंशति-द्वाविंशति-त्रयोविंशति-चतुर्विंशति-पञ्चविंशति-षड्विंशति-सप्तविंशति-अष्टाविंशतिशब्दाः ।

त्रिंशत् त्रिंशतम् त्रिंशता त्रिंशते त्रिंशतः [त्रिंशतः] त्रिंशति ।

एवम्-एकोनत्रिंशत्-एकत्रिंशत्-द्वात्रिंशत्-त्रयस्त्रिंशत्-चतुस्त्रिंशत्-[पञ्चत्रिंशत्] - षट्त्रिंशत्-सप्तत्रिंशत्-अष्टात्रिंशत् - एकोनचत्वारिंशत् - चत्वारिंशत्- एकचत्वारिंशत् - द्विचत्वारिंशत्, द्वाचत्वारिंशत् - षट्चत्वारिंशत् - सप्तचत्वारिंशत्- अष्टचत्वारिंशत्, [अष्टाचत्वारिंशत्]- एकोनपञ्चाशत् - पञ्चाशत्- [चतुःपञ्चाशत्]- पञ्चपञ्चाशत्-षट्पञ्चाशत्-सप्तपञ्चाशत्-अष्टपञ्चाशत्, अष्टापञ्चाशत्-एकोनषष्टि-षट्षष्टि-सप्तषष्टि-अष्टषष्टि, अष्टाषष्टि-एकोनसप्तति-सप्तति-एकसप्तति-द्विसप्तति, [द्वासप्तति]- त्रिसप्तति, त्रयःसप्तति- चतुःसप्तति-पञ्चसप्तति-षट्सप्तति-सप्तसप्तति-अष्टसप्तति, अष्टासप्तति-एकोनाशीति-अशीति-एकाशीति-द्व्यशीति, द्वाशीति, त्र्यशीति-त्रयोशीति-चतुरशीति-पञ्चाशीति-षडशीति, सप्ताशीति-अष्टाशीति-एकोननववति-नवति-एकनवति-द्विनवति, [द्वानवति]-त्रिनवति, त्रयोनवति-चतुर्णवति-पञ्चनवति-षण्णवति-सप्तनवति-अष्टनवति, अष्टानवति-नवनवतिः, सर्वेऽपि शब्दाः विंशतिवज्ज्ञेयाः ।

शतम्	शते	शतानि ।
सहस्रः	सहस्रौ	सहस्राः
सहस्रम्	सहस्रे	सहस्राणि
सहस्रम्	सहस्रे	सहस्राणि
शेषं देववत् ।		

लक्षः	लक्षौ	लक्षाः
लक्षम्	लक्षे	लक्षाणि
शेषं देववत् ।		
कोटिर्बुद्धिवत् ।		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं सङ्ख्यावाचकाः शब्दाः समाप्ताः ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषाणामिवाऽहो युष्मदस्मदां दुर्लक्ष्याणीह रूपाणि । तेषामपि यथा यथा त्रिषष्टिरूपयुष्मदस्मदौ समाप्तौ स्तः ।

परिशिष्टम् ॥

शतृ-क्वसू नाद्यानि परस्मै च (नवाऽऽद्यानि शतृ-क्वसू च परस्मैपदम्) [सि० ३-३-१९] आत्मनेपदं कानानशौ पराणि (पराणि कानानशौ चाऽऽत्मनेपदम्) [सि० ३-३-२०] स्यादिति । ॥द०॥

अकार उच्चारार्थः । यथा-वद वि(व्य)क्तायां वाचि ।

आः । आदितः [सि० ४-४-७१] इति सूत्रेण क्तयोरिट्निषेधार्थः । यथा-नि(त्रि)मिदाङ्-स्नेहने, मिन्नः, मिन्नवान् ।

इः । इडितः कर्तरि [सि० ३-३-२२] अनेनाऽऽत्मनेपदार्थः । यथा-एधि-वृद्धौ, एधते ।

ईः । इरी (ई)गितः [सि० ३-३-९५] इत्यनेन फलवति कर्तयात्मनेपदार्थः । यथा- वहीं-प्रापणे, वहते ।

ऊः । उदितः स्वरान्नोऽन्तः [सि० ४-४-९८] इत्यनेन नाऽऽगमार्थः । यथा-टुनदु-समृद्धौ, नन्दति ।

ऊः । ऊदितो वा [सि० ४-४-४२] इति क्त्वादौ इट्विकल्पः । यथा-क्रमू-पादविक्षेपे, क्रन्त्वा, क्रमित्वा ।

ऋः । उपान्त्यस्या [ऽसमानलोपि शास्वृदितो ङे सि० ४-२-३५] इत्यनेन ङपरे णौ उपान्त्यह्रस्वाभावार्थः । यथा-ओणृ-अपनयने, मा भावात् (भवान्) ओणिणत् ।

ॠः । ॠदिच्छ्वि [स्तम्भू-म्रुचू-म्लुचू-ग्रुचू-ग्लुचू-ग्लुञ्चू-श्रो(ज्रो) वा सि० ३-४-६५] इत्यनेनाऽद्यतन्यां विकल्पेन अङर्थः । यथा-रुधृंपी-आवरणे, अरुधत्, अरौत्सीत् ।

लृः । लृदिद्-द्युतादि [पुष्यादेः परस्मै सि० ३-४-६४] इत्यनेन अङर्थः । यथा-घस्लृ-अदने, अघसत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लृर्नास्ति ।

एः । न श्वि-जागृ[शस-क्षणह्म्येदितः सि० ४-३-४९] इत्यनेन सिचि वृद्धिनिषेधार्थः । यथा-लगे-सङ्गे, अलगीत् ।

ऐः । डीयश्व्यैदितः क्तयोः [सि० ४-४-६१] इति इट्निषेधार्थः । यथा- त्रस्तः, त्रस्तवान् ।

ओः । सूयत्याद्योदितः [सि० ४-२-७०] क्तयोः तस्य नकारार्थः । यथा- ओलसजेड् (ओलस्जैति)-व्रीडे, लग्नः, लग्नवान् ।

औः । धूगौदितः [सि० ४-४-३८] इति इट् विकल्पार्थः । यथा-गुपौ-रक्षणे, गोपाय(यि)ता, गोप्ता । अनुस्वारः एकस्वरादनुस्वारेतः [सि० ४-४-५६] इति इट्निषेधार्थः । यथा-पां-पाने, पास्यति, पाता । णींग्-प्रापणे, नेष्यति, नेता । डुक्रींग्श्-द्रव्यविनिमये, क्रेष्यति, क्रेता । विसर्गो नास्ति ।

इति स्वराद्यनुबन्धफलम् ।

अथ कादयोऽनुबन्धाः । धातुषु प्रत्ययेषु च यथासम्भवं दर्शयिष्यन्ते ।

कः । अदादेरुपलक्षणार्थस्तथा प्रत्ययेषु गुणनिषेधार्थः । यथा-क्व-क्वत्-(क्त-क्तवतु)क्तिषु, कृतः-कृतवान्-कृतिः ।

खः । प्रत्ययानां, खित्यनव्ययारुषो मोऽन्तो ह्रस्वश्च [सि० ३-२-१११] इति पूर्वपदस्य मागमार्थः । यथा- मेघं करोतीति मेघङ्करः । मेघर्तिभयाभयात् खः [सि० ५-१-१०६] इति खप्रत्यये ।

गः । ईगितः [सि० ३-३-९५] इति फलवत्कर्तर्यात्मनेपदार्थः । यथा-श्रिग्-सेवायाम्, श्रयते ।

घः । घञ्-घ्यणादिषु, क्तेऽनिटश्चजोः कगौ घिति [सि० ४-१-१११] अत्र विशेषणार्थः । यथा- 'डुपचींष्-पाके, घञि पाकः । त्यजं-हानौ त्यागः ।

ङः । इङिगः(इङित) कर्तरि [सि० ३-३-२२] आत्मनेपदार्थः । यथा- शीङ्क् - स्वप्ने, शेते । प्रत्ययार्थानां गुणनिषेधार्थः । यथा- ऋतेर्ङीयः [सि० ३-४-३] ऋतीयते । चः । दिवादिलक्षणार्थः ।

छजझा न सन्ति ।

ञः । [ज्ञानेच्छार्चार्थ] ञीच्छील्यादिभ्यः क्तः [सि० ५-२-९२] इति वर्तमाने क्तार्थः । ञिष्वपंक् शये, स्वपितीति सुप्तः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टः । स्वादिलक्षणार्थः । प्रत्ययेषु स्त्रियां, अणञेयेकण् [नञ्-स्नञ्-टिताम् सि० २-४-२०] इत्यर्थः । यथा-कृगः खनट् करणे [सि० ५-१-१२९] पलितङ्करणी जरा । तथा, वोर्ध्वं दघ्नट् द्वयसट् [सि० ७-१-१४२] जानी(नु)दघ्नी, जानुद्वयसी । तथा-ट्धें-पाने, स्तनंधयी । टफलं स्त्रियां डीप्रत्ययः ।

ठो नास्ति ।

डः । डित्यन्त्यस्वरादेः [सि० २-१-११४] इत्यर्थविशेषणार्थः । यथा-डिर्डौ [सि०] मुनौ, धेनौ । धातुषु डः शब्दः । ड्वितस्त्रिमक् तत्कृतम् [सि० ५-३-८४] इत्यत्र विशेषणार्थः । यथा- डुकृंग्-करणे, करणे निवृत्तं कृत्रिमः ।

णः । चुरादिषु लक्षणार्थः । प्रत्ययानां वृद्ध्याद्यर्थः । यथा-णिगि कारयति, तथा करोतीति कारकः, णक-तृचौ [सि० ५-१-४८] । तथा उपगोरपत्यम् औपगवः । डसोऽपत्ये [सि० ६-१-२८] प्राग् जितादण् [सि० ६-१-१३] ।

तः । तुदादिलक्षणार्थः ।

थ-द-धा न सन्ति ।

नः । इच्चाऽपुंसोऽनति(नित्)क्याप्परे [सि० २-४-१०७] इत्यत्र विशेषणार्थः । यथा-जीवतात् । जीवका आशिष्यकन् [सि० ५-१-७०] । तथा अनुकम्पिता दुर्गादेवी दुर्गका, लुक्युत्तरपदस्य कपन् [सि० ७-३-३८] ।

पः । रुधादिलक्षणार्थः । प्रत्ययेषु, ह्रस्वस्य तु(तः) पित्कृति [सि० ४-४-११३] इति तागमार्थः । यथा-तीर्थं करोतीति तीर्थकृत् क्विपि । क्यङ्मानि पित्तद्धिते [सि० ३-२-५०] इत्यनेन विशेषणार्थः । यथा- अजाभ्यो हितम्, अजथ्यं यूथम् ।

फ-ब-भा न सन्ति ।

मः । दाम्-दाने दामः सम्प्रदानेऽधर्म्ये(र्म्य) चाऽऽत्मने च [सि० २-२-५२] इत्यादौ विशेषणार्थः । यथा-दास्यै (स्या) संप्र[य]च्छते कामुकः ।

यः । तनादिलक्षणार्थः ।

रः । रिति [सि० ३-२-५८] इति सूत्रेण पुम्वद्भावार्थः । यथा-पट्वी प्रकारोऽस्याम्, पटुजातीयः । प्रकारे जातीयर् [सि० ७-२-७५] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लः । मन्यनि ण्यणि स्त्र्युक्ता इत्यनेन स्त्रीलिङ्गार्थः । कवेर्भावः कविता, भावे त्व-तल् [सि० ७-१-५५] ।

वः । उत और्विति व्यञ्जनेऽद्वेः [सि० ४-३-५९] इत्यादिविशेषणार्थः । यथा-युक्-मिश्रणे, तिवि यौति ।

क(श)कारः क्यः शिति [सि० ३-४-७०] इत्यादिविशेषणार्थः । यथा-क्रियते इति क्रिया । कृगः शच्चाषः (श च वा) [सि० ५-३-१००] ।

षः । षितोऽङ् [सि० ५-३-१०७] इत्यत्र विशेषणार्थः । यथा-क्षमौषि-सहने, क्षमणं, क्षमा ।

सः । नामासिद्य (म सिदय्) व्यञ्जने [सि० १-१-२१] इत्यत्र पदत्वार्थः । यथा- भवतोऽपत्यं भवदीयः, भवतोरिकणीयसौ [सि० ६-३-३०] ।

हो नास्ति ।

धातुपारायणावचूरिः समाप्ता ।

श्रीहेमचन्द्रसूरिव्याकरणनिवेशितानां धातूनां प्रत्ययानां चाऽनुबन्धफलं लिलिखानम् ।

॥ छ ॥ श्री ॥

आवरणचित्र विषे

पेथापुर (महेसाणा) गामना 'बावन जिनालय' स्वरूप प्राचीन जिनमन्दिरमां विराजती आ जिनप्रतिमा छे, जे परम्पराथी अजितनाथ-प्रतिमा (बीजा जैन तीर्थङ्कर) तरीके जाणीती छे. कायोत्सर्ग (ध्यानस्थ) मुद्रामां रहेली आ प्रतिमानी विलक्षणता ए छे के तेना बन्ने हाथोमां माळा तथा कमण्डलु देखाय छे. सामान्यतः ध्यानस्थ के पद्मासनस्थ कोई पण प्रकारनी जिनप्रतिमाना हाथोमां आवी कोई ज वस्तु होती के मूकाती नथी. आ दृष्टिए आ एक प्रतिमा गणाय. जोके प्रतिमानी पाटली परनो लेख हशे तो पण अत्यारे घसाई घसाईने अदृश्य छे. परन्तु आ प्रतिमा तीर्थङ्करनी प्रतिमा न होय, पण कोईक साधक मुनिनी प्रतिमा हशे, एवी सम्भावना तथ्यनी वधु निकट जणाय छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्यायश्रीक्षमाकल्याणगणिकृत
श्री जैन तीर्थावली द्वात्रिंशिका

सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

तीर्थमाळा स्तवन-

तीर्थमाळा (तीर्थावली) अने चैत्यपरिपाटी अेटले तीर्थयात्रासम्बन्धी ऐतिहासिक वा अन्य माहिती आपनार महत्त्वना स्रोत. बन्ने प्रकारनी रचनाओ माटे पू. मुनिश्री कल्याणविजयजीअे 'पाटण चैत्य परिपाटी' ग्रन्थमां सरस समजण आपी छे. जोईअे (वांचीअे) अेमना ज शब्दोमां-

"तीर्थमाळास्तवनोनुं लक्षण अे होय छे के पोते भेटेला-सांभळेला के शास्त्रोमां वर्णवेला नामी-अनामी तीर्थोना चैत्य वा प्रतिमाओनुं वर्णन, तेनो साचो वा कल्पित इतिहास, तेनो महिमा अने ते सम्बन्धी बीजी बाबतोनुं वर्णन करवा पूर्वक स्तुति वा प्रशंसा करवी. आचाराङ्ग निर्युक्ति अने निशीथचूर्णिमां थयेला तीर्थोनी नोंध ते आजकालनी तीर्थमाळानुं मूळ समजवुं जोईअे.

चैत्यपरिपाटीस्तवनोनुं लक्षण अे होय छे के कोईपण गाम के नगरनी यात्राना समयमां क्रमवार आवतां देरासरोनां नाम, ते ते वासनां नाम, तेमा रहेली जिनप्रतिमाओनी संख्या वगेरे जणाववा पूर्वक महिमानुं वर्णन करवुं ते....."

पू. उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी महाराजे पोते करेल तीर्थयात्रानी भावसभर स्मरणा रूपे आ कृतिनी रचना करी होय तेनुं 'तीर्थमाळा द्वात्रिंशिका' नाम योग्य छे. 'अनंसिषं, प्रणताः, नताः, वन्दे' वगेरे प्रयोग पण पूर्वयात्रा स्मरणना साक्षी छे.

आवी प्राकृत-अपभ्रंश-संस्कृत-मारुगुर्जर वगेरे भाषाओमां रचायेली गिरनार-समेतशिखर-शत्रुंजय-नाकोडा-अमदावाद-वागड-कुरुदेश-सोरठ-खंभात-बद्री (हिमालय) वगेरे स्थळो (तीर्थस्थळो)नी तीर्थमाळा उपलब्ध थाय छे. जेनी संख्या लगभग ६० थी ७० थाय.

जैनतीर्थावली द्वात्रिंशिका-सार :

पद्य १-२मां मंगळ अने प्रतिमाने स्थान आपी ३ थी २२ पद्य सुधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविअे पोते करेल शत्रुंजय, गिरनार, घोघा, भावनगर, भृगुकच्छ (भरुच), हालार, कंठाल, गुजरात, कच्छ, खंभात, शंखेश्वर, मरुभूमि (मारवाड), गोडीपुर, अर्बुद (आबु), सीरोहि, महेवापुर (मेवापुर) लोद्रवपत्तन (लोद्रवपुर), जेसलमेर, बीकानेर, रिणीपुर (बीकानेर पासे आवेलुं हाल तारानगर तरीके ओळखातुं गाम) फलवर्द्धिका (फलवृद्धिपार्श्वनाथ-मेडतारोड ?) गोडवाड, राणपुर (राणकपुर), अयोध्या, चन्द्रपुरी, चंपानगरी (चंपापुरी), समेतशिखर, राजगृही, वैभारगिरि, विपुलाचलगिरि, रत्नाचलगिरि, स्वर्णगिरि, उदयाचलगिरि, पावापुरी, वडग्राम, काकंदि (संभवनाथ भ.नुं जन्मकल्याणक स्थळ), फतुआ (फतेहपुर ?) पाटलिपुत्र (पटना) वगेरे तीर्थोने स्मरण करीने परमात्माने नमस्कार करवामां आव्यो छे. पद्य २३मां वैताढ्यगिरि उपर आवेला जिनबिम्बोने वन्दनानी भावना व्यक्त करी छे. भावनगरनो उल्लेख होवाथी भावनगरनी स्थापना पछीनी आ रचना होवानुं नक्की थाय छे.

श्लोक २४-२५मां जैन परम्परानुसार केवा जिनचैत्यने वन्दना करवी तेनो खुलासो कर्ताअे आ प्रमाणे कर्यो छे : ''शुद्ध आचार्य द्वारा स्थापित-प्रतिष्ठित होय, शरीरमां-प्रतिमामां गुह्य भाग गूढ-न देखाय तेवो होय, अने आकृति खूब सुन्दर होय; वळी मिथ्यादृष्टिओ द्वारा तेना पर मालिकी न थती होय तथा सम्यक्त्ववाळा लोको द्वारा जेनी भावपूर्वक सेवा थती होय, तेवा अर्हत्-चैत्योनो अहीं रहेलो हुं भक्तिथी वंदुं छुं.

पद्य २६मां जिनमार्गनुं अने पद्य २७ मां जिनपूजानुं माहात्म्य ओछा पण वजनदार शब्दथी जणावी पछीना बे पद्य २८-२९मां स्थापनानिक्षेपनो विरोध करनाओनी सारा शब्दोमां टीका करी छे. पद्य ३० मां भावतीर्थ अेवा अरिहंत परमात्मानी दर्शननी ईच्छा व्यक्त करी पद्य ३१मां वीतराग अवस्था न प्राप्त थाय त्यां सुधी जिनपूजन-वन्दन-सेवननी भावना स्थिर रहे ते प्रार्थना करी छे.

उपसंहारना अन्तिम पद्यमां 'अमृतधर्मगणीना शिष्य क्षमाकल्याण उपा. बनावेल जैन तीर्थावली द्वात्रिंशिका भव्य आत्माओनी दर्शनशुद्धिने माटे थाओ' अे प्रमाणे इच्छा व्यक्त करी कृतिने पूर्ण करी छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्तापरिचय :

उपाध्यायजीना जीवननी टूंक नोंध 'पुण्यश्रीमहाकाव्य' ना सर्ग २मां नीचे मुजब जोवा मळे छे.

बीकानेर राज्यना केसरदेसर नामना गाममां सं० १८०१मां मालू गोत्रीय श्रेष्ठिने त्यां तेमनो जन्म थयो. सं. १८१२मां अमृतधर्मगणीनुं शिष्यत्व स्वीकारी राजसोमोपाध्याय पासे न्याय, व्याकरण साहित्य दर्शनशास्त्रनी शीक्षा मेळवी. तेमनी प्रतिभा जोईने गच्छनायके तेमने उपाध्याय पद आप्युं. गौतमीयमहाकाव्यनी टीका, आत्मप्रबोध, प्राकृतभाषा बद्ध श्रीपाळचरित्रनी टीका, अनेक स्तोत्रो अष्टाह्निका-अक्षयतृतीया-मेरुत्रयोदशी-होलिका वगेरे पर्वनां व्याख्यानो वगेरे अनेक कृतिओनी रचना तेमणे करी. सं. १७८३मां तेमनो स्वर्गवास थयो. तेमने कल्याणजय-विवेकजय वगेरे शिष्यो पण हता.

पू. उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी महाराजनी अप्राप्य-अप्रगट कृतिओमांनी एक अेवी आ कृति श्री नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरिज्ञानभण्डारनी २ पानानी आ प्रत स्वच्छ अक्षरोमां लखायेल छे. संवत् १८४८मां लखायेल छे. दरेक पाना उपर १२ लीटी छे. दरेक लीटीमां लगभग ३५ थी ४५ अक्षर छे.

उपाध्यायश्रीक्षमाकल्याणगणिकृता

श्रीजैनतीर्थावलीद्वात्रिंशिका

तीर्थेश्वरश्रीयुतविद्यमान-सीमन्धरस्वामिवरस्वरूपम् ।
ध्यात्वा हृदन्तः प्रणतामनिन्द्यां, स्तोष्यामि तीर्थावलिकां प्रसिद्धाम् ॥१॥
चैत्यं जिनेन्द्रस्य जिनेन्द्रतुल्य-मित्यागमोक्तिं परिभाव्य सम्यक् ।
क्षेत्रे किलाऽस्मिन् जिनचैत्यमालां, सद्भावतः स्तोतुमहं यतिष्ये ॥२॥
सौराष्ट्रदेशे बहुसन्निवेशे, शत्रुञ्जयः शैलपतिर्विभाति ।
तच्छृङ्गरूपः पुनरुज्जयन्तो नगोत्तमः साधुसुदर्शनीयः ॥३॥
तत्राऽऽदिनाथप्रमुखा जिनेन्द्राः, श्रीपुण्डरीकप्रमुखा मुनीन्द्राः ।
नेमीश्वराद्याः प्रणताः क्रमेण, स्वकृत्यसंसाधनतत्परेण ॥४॥
घोघापुरे श्रीनवखण्डपार्श्वं, चैत्यं च भावान्नगरे जिनस्य ।
अनंसिषं श्रीभृगुकच्छसंज्ञे, पुरे पुनः श्रीमुनिसुव्रतेशम् ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हालार-कण्ठाल-सुगुर्जरत्ता-कच्छादिदेशस्य जिनालयेषु ।
नता जिनाः स्थम्भनपार्श्वदेवा-दीन् विश्वपो नन्तुमनाः समस्मि ॥६॥
शङ्खेश्वरे सेवितपार्श्वदेवो, मरौ च देशे नवदुर्गभूमौ ।
गोडीपुरोद्भासकपार्श्वनाथ-मनंसिषं सत्यपुरे च वीरम् ॥७॥
नगेऽर्बुदाख्ये वरचैत्यवृन्दे, सीरोहिकायां च पुरि प्रधाने ।
पुनर्महेवादिपुरेष्व(षु)वन्दे, जिनेश्वरान् निर्वृतिकारिमूर्तीन् ॥८॥
फणासहस्रान्वितपार्श्वनाथा-दीन् पत्तने श्रीमति लोद्रवाख्ये ।
चिन्तामणिस्वामिमुखान् जिनेन्द्रान्, श्रीजेसलाद्रावनमं सुभक्त्या ॥९॥
बीकादिनेराख्यपुरे प्रधाने, श्रीनाभिराजाङ्गजमुख्यदेवान् ।
अवन्दिषि श्रीजिनशीतलेशं, रिणीपुरे नन्तुमनाः समस्मि ॥१०॥
पार्श्वादिसार्वान् फलवर्द्धिकादौ, श्रीगोढवाडस्थितपञ्चतीर्थीम् ।
मनोहरां राणपुरादिकं चा-ऽभजं प्रभूतार्हतचैत्ययुक्ताम् ॥११॥
श्रीमारुदेवा-ऽजितनाथदेवा-ऽभिनन्दन-श्रीसुमतीश्वराणाम् ।
अनन्तनाथस्य च जन्मभूमिं, पुरीमयोध्यामवलोक्य हृष्टः ॥१२॥
जिनेन्द्रचन्द्रप्रभपादपद्मे, श्रीचन्द्रपुर्यां प्रणते प्रमोदात् ।
वाराणसीतीर्थभुवि प्रकामं, नमस्कृताः पार्श्व-सुपार्श्वदेवाः ॥१३॥
अथाङ्गदेशाश्रितभूमिभागे, चम्पानगर्यां वसुपूज्यसूनोः ।
जिनस्य चैत्यं प्रणिपत्य भक्त्या, श्रीवासुपूज्येशमहं स्मरामि ॥१४॥
श्रीबङ्गदेशे सुमनोहराणि, जिनेन्द्रचैत्यान्यभिवन्द्य मोदात् ।
सम्मेतशैले गिरिराज उच्चै-र्नताऽर्हतां विंशतिरात्मशुद्ध्यै ॥१५॥
देशे प्रधाने मगधाभिधाने-ऽभवत् पुरं राजगृहाभिधानम् ।
तत्पार्श्वदेशे वरपञ्चशैलीं, समीक्ष्य चित्ते मुदितोऽस्मि सम्यक् ॥१६॥
आद्यस्तु वैभारगिरि(:) प्रसिद्धो द्वितीयकः श्रीविपुलाचलाख्यः ।
रत्नाचल-स्वर्णगिरी ततो द्वौ, ततस्तत(:) श्रीरुदयाभिधोऽद्रिः ॥१७॥
नगेषु चैतषु पुनर्नगर्यां, श्रीवीरनाथप्रमुखान् जिनेन्द्रान् ।
श्रीगौतमादीनाण(न् गण) धारिणश्च, नत्वाऽन्यसाधूनभवं सुपुण्यः ॥१८॥

(त्रिभिः सम्बन्धः)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावापुरीमध्यगतं मनोज्ञं, विमानरूपं चरमेशचैत्यम् ।
द्वितीयकं वारिगतं च सम्यग् निरीक्ष्य नत्वा च मुदा भृतोऽस्मि ॥१९॥
चैत्यं वडग्रामगतं प्रणम्य, मनोरमे क्षत्रियकुण्डघाटे ।
गिरौ च चन्द्रप्रभ-वीरमुख्यान्, चैत्येषु भक्त्या नतवानहं तान् ॥२०॥
काकन्दिकायां च पुरे विहारे, जिनेन्द्रचैत्यानि मयाऽभिवन्द्य ।
ग्रामेऽभिरामे फतू(तु)आभिधाने, नमस्कृता कुन्थुजिनेन्द्रमूर्तिः ॥२१॥
श्रीपत्तने पाटलिपुत्रनाम्नि, विशालनाथप्रभृतीन् जिनेन्द्रान् ।
सुदर्शनं श्रेष्ठिमुनिं च सिद्ध-मनंसिषं शुद्धगुणाप्तिहेतोः ॥२२॥
वैताढ्यशृङ्गादितानि भास्व-ज्जिनेन्द्रचैत्यानि च शाश्वतानि ।
अष्टापदे चाऽऽर्षभिकारितानि, समस्म्यहं तानपि नन्तुकामः ॥२३॥
एतानीन्द्रवज्रोपजातिच्छन्दांसि ॥ अथ शालिनीच्छन्दः ॥
ग्रामेऽरण्ये वा पुरे वा गिरौ वा, शुद्धाचार्यस्थापितानीह यानि ।
देहेऽत्यन्तं गूढगुह्यप्रदेशा-न्याकारेण प्राज्यसौन्दर्यभाञ्जि ॥२४॥
मिथ्यादृग्भिर्नाऽपि च स्वीकृतानि, समयग्दृग्भिर्भावतः सेवितानि ।
अर्हच्चैत्यान्यत्र देशे स्थितोऽहं, वन्दे भक्त्या तानि सर्वाणि नित्यम् ॥२५॥
॥ युग्मम् ॥
अस्मिन् काले लेशतो विद्यमानः, काम्यः श्रीमज्जैनवाणीप्रकाशः ।
आधारोऽसावेककः प्राणभाजां, यत्सम्पर्कात् प्राप्यते शुद्धमार्गः ॥२६॥
अस्त्याऽऽधारोऽर्हत्प्रतिच्छन्द एष सौम्याकारो निर्विकारोऽद्वितीयः ।
सद्भावाप्तिर्दर्शनाद् यस्य पुंसां सञ्जायेत प्रायशो दोषनाशः ॥२७॥
दृष्टात्मानः केचिदैदंयुगीना लोकाः पापोद्भूतमिथ्यात्वयोगात् ।
नो मन्यन्ते स्थापनां विश्वभर्तु-र्दुष्टैर्वाक्यैर्ये तु निन्दन्ति पूज्याम् ॥२८॥
जैनाभासास्ते हताशाः स्वकृत्ये, स्वेच्छोत्सूत्रालापिनः पापचित्ताः ।
संसारेऽस्मिन् दुर्गतौ गन्तुकामाः, सन्त्येतेषां दुर्दशां तर्कयामि ॥२९॥ युग्मम् ॥
अथ स्रग्विणीच्छन्दः ।
भावतीर्थेशितुर्दर्शनं सर्वदे-च्छामि संसारनिस्तारकारि ध्रुवम् ।
भावनिक्षेपमाधाय चित्ते स्वयं, स्थापना-द्रव्य-नामाख्यनिक्षेपकान् ॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्तुमिच्छामि वन्दे भजामि त्रिधा, भावनैषैव मे सर्वदा सुस्थिरा ।
अस्तु नो यावता वीतरागादिता, स्यादिति प्रार्थये वर्द्धमानेशितुः ॥३१॥
॥ युग्मम् ॥

इत्थं **गणीशामृतधर्मशीष्य-क्षमादिकल्याण**विशारदेन ।
श्रीजैनतीर्थावलिका स्तुतेयं भव्यात्मशुद्ध्यै भवतादजस्रम् ॥३२॥

॥ इति श्रीजैनतीर्थावलीद्वात्रिंशिका ॥

संवत् सिद्धिवेदवसुचन्द्र १८४८ मिते चैत्रसितसप्तम्यां श्रीपाटलीपुरपत्तने परिपूर्तिमितेयम् ॥

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच हरियाळी

- उपाध्याय भुवनचन्द्र

'हरियाळी' ए मध्यकालीन गुजराती भाषानो एक जाणीतो काव्यप्रकार छे. प्रहेलिका अने हरियाळीनो विषय सरखो छे परंतु प्रहेलिकानुं स्वरूप एक दूहा के चोपाई जेटलुं सीमित होय छे ज्यारे हरियाळीमां समस्यानुं वर्णन विस्तृत होय छे अने गीतना रूपमां होय छे.

आवी पांच हरियाळी संकलित करीने अहीं आपी छे. प्रथम हरियाळी बीकानेर-पार्श्वचन्द्रगच्छ ज्ञानभण्डारना एक चोपडानी झेरोक्स नकलना आधारे आपी छे. बाकीनी अमारा संग्रहना प्रकीर्ण पत्रोमांथी मळी छे. कोई पण हरियाळीनो उकेल ते ते पत्रमां आपेलो नथी, पण यथामति विचारीने अत्रे दरेक हरियाळीना अन्ते मूक्यो छे. वाचकोने बीजो कोई उकेल सूझे तो 'अनुसन्धान' पर लखी मोकलवा विनंति छे.

(१)

ते विण सरग-नरग नहीं ते विण,
नहीं पवन ने पाणी रे;
सर-नीझरण-नदी नहीं ते विण,
ते विण नहीं निरवाणी रे.... १

पंडित विचारिज्यो रे
एहनउ अरथ कहउ कविराज;
सोलि वरसनी अवधि कहउ,
अथवा कहिज्यउ आज.... पंडित० २

ते विण मुगति-सुगति नहीं, ते विण
नहीं समकित-मिथ्यात रे;
लोकालोक कछु नहीं ते विण,
[एहवी] अद्भुत वात रे... पंडित० ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपासचंद्रसूरीसर इम जंपइ,

....

नाम कही दीधो धुर एहनउ

पंडित ... . पंडित० ४

उकेल : **भवितव्यता** अथवा **नियति** आनो जवाब होई शके. कविए गीतमां क्यांक नाम सांकेतिक रूपे मूक्युं छे पण ते समजातुं नथी. चोथी कडीमां बे पंक्ति स्पष्ट वांची शकाई नथी.

(२)

नारी रे में दीठी एक आवती रे, जाती न देखे कोय रे;

जे नर एहने आदरे रे, तेनैं सिवसुख होय रे, ना० १

[धर्मी]जन तणे मुखें रहे रे, पापी संग न जाय रे;

धरमी जन पासें वसे रे, पद बत्रीस कहेवाय रे, ना० २

एक सो नवाणु बेटडा रे, मोटा चोवीस ईश रे;

नानडीआ हवे सांभलो रे, सत पंच्योत्तर सीस रे, ना० ३

अढार लाख जूठा बेटडा रे, उपर चोवीस हजार रे;

एक सो वीस मांहि मूंकीइं रे, तो पामिइं भवपार रे, ना० ४

आठ संपदाएं परवरी रे, नारी ..... सरूप रे;

मुक्तिरमणी बहु मेलव्या रे, वडवडेरा भूप रे, ना० ५

गौतमस्वामियें पूछीउं रे, उपदेशे श्री वर्धमान रे;

एहथी अनंत जीव पामिया रे, खीण मांहे केवलज्ञान रे, ना० ६

साध-साधवी सहू आदरे रे, आदरे अरिहंत देव रे;

मेघराज मुनि इम भणे रे, इनी करज्यो घणी सेव रे, ना० ७

इति श्री अरीआवही समस्या सज्झाय ।

– प्रकीर्ण पत्र

उकेल : **इरियावही.** आमां 'आवही' उच्चार छे ते उपरथी 'आवती जोइ छे, पण जाती नथी जोई' एवी कल्पना कविए करी छे. १९१ बेटा = 'इरियावही' तथा 'तस्स उत्तरी' सूत्रना कुल अक्षर. मोटा दीकरा = गुरु अक्षर. नाना दीकरा = लघु अक्षर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३)

आंबाडालें सुडली, तस पंख ज नावे;
चुण करेवा कारणें, तोही पण जावे, आंबा० १
देहीवरण लीली नथी, तस चांच छे लीली;
चांचे इंडा मूकती, सायरमां झीली, आंबा० २
ते इंडा चांप्यां घणां, फोड्या नवी फूटे;
तेहनी सेवा जे करे, भवपातक मेटे, आंबा० ३
जिनहरख पंडित इम कहे, कहो ते कुण सूडी;
अरथ विचारी जे कहे, तस समजण छे रूडी, आंबा० ४

– प्रकीर्णपत्र

उकेल : **लखवानी कलम.** चण करवा जाय–अक्षर लखे. चांचथी इंडा मूके–अक्षर. सागरमां झीले–शाहीना खडियामां बोलाय.

(४)

एक नारीने बे पुरुषें झाली, नारी एक नीपाई;
हाथ–पाय नवि दीसे तेहने, मा–विहुणी बेटी जाई,
चतुर नर, ते कुण कहीइं नारी ?

ते तो सुरनरनें प्यारी, चतुर नर, ते कुण० १
चीर–चूनडी चरणां ने चोली, नवी पहेरी ते बाली;
छहिल पुरुष देखीने मोहे, एहवी ते रूपाली,
चतुर नर० २

अपासरे नवी जाइ कहींइं, देहरे जाइ हरखी;
नर–नारीस्युं रंगे रमती, सहू को साथे सरखी,
चतुर नर० ३

उत्तम जातिनुं नाम धरावे, मन मानें तिहां जावे;
कंठे वलगी लागे प्यारी, साहिबने रीझावे,
चतुर नर० ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिवसनुं जोवन तेनुं, पछे नवि आवे को काम;
पंच अक्सर छे सुंदर तेहना, सोधी लेज्यो नाम,
चतुर नर० ५
कांतिविजय कवि इणि परि बोलइ, सुणयो नर ने नारी;
ए हरिआलि अरथ कहिये, जाउं हूं तेहनी बलिहारी,
चतुर नर० ६

– प्रकीर्ण पत्र

उकेल : **फूलनी माळा.** बे पुरुषोए झाली बे हाथे फूलनी माळा पकडाय. माळा स्त्रीलिंग छे माटे 'बेटी', पण एनी 'मा' कोई नथी.

(५)

गोरी रे गुणवंति गुणि आगली रे, तेहना बापनी जगमां माम रे;
बापनो बाप सामो मलइ रे, त्यारि न जइ[इं] गामि रे; गोरी० १
बापना बापस्युं ते मिली रे, त्यारिं थयो ते बाप रे;
बापस्युं तेणि संगम कीउ रे, तो हि न लागु पाप रे, गोरी० २
बलवंत बेटो रे तेहनी कूखथी रे, ऊपनो जगि एक रे;
मान दीइं मोटा राजवी रे, तेमां घणो अव(वि)वेक रे; गोरी० ३
जेठइ ते होइ दूबली रे, तोहि वांछिइ सहू कोय रे;
भादिरवइ ते नारीनइ रे, मान थोडे स्युं होइ रे, गोरी० ४
रूप ते पूर्णिमा सारिखुं रे, थोडिं मुल्ल वेचाय रे;
उत्तमनइ कुलि ऊपनी रे, नीच तणि धरि जाय रे, गोरी० ५
एक कुलथी ऊपना रे, सात अक्षरनुं नाम रे;
मेघचंद गणि शीस कहइ रे, ए छइ अरथनो ठाम रे, गोरी० ६

– प्रकीर्ण पत्र

उकेल : **दूध-दहीं-छाश-घी.**

C/o. पार्श्वचन्द्रगच्छ जैन उपाश्रय,
माणेकचोक, कन्याशाला सामे, खम्भात.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंगदास कृत

श्री आचार्यजीना बार मसवाडा

सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजयौ

ई.स. नी १३मी सदीथी लई ई.स. नी १९मी सदी सुधी जैन-जैनेतर बन्ने कविओए खेडेलो मध्यकालीन साहित्यनो एक प्रकार ते **बारमासा** साहित्य.

बारमासा काव्यमां मुख्यत्वे विरह अने मिलननां शृङ्गारिक भावोने वर्णववामां आवे छे. बारे महिनानी नैसर्गिक परिस्थितिथी चित्त पर थती लागणीओनुं वर्णन करवुं ते ज आ काव्यनो प्राण छे. प्रस्तुत कृतिमां पण तेवा ज भावो वर्णवाया छे. परंतु माता अने पुत्र वच्चेनो दीक्षा माटेनो वार्तालाप ते काव्यने शृङ्गार प्रधान न करता वैराग्य-प्रधान बनावे छे.

माता शारदाने नमस्कार करी कवि जसवंतऋषिना गामनुं नाम, माता-पितानुं नाम, स्वप्नदर्शनथी पुत्रनो जन्म, पुत्रनुं नामकरण, पुत्रनी संसारत्यागनी अभिलाषा इत्यादिक वर्णन पीठिका रूपे बांधी मागसर मासथी लई बारे मासनुं वर्णन शरु करे छे. जुदा जुदा महिनाना उपभोगनुं वर्णन करी माता सहोदरा पुत्रने संसारत्याग न करवा समजावे छे. ज्यारे पुत्र जसवंत ते ज भोगोने धर्मतत्व साथे घटाडी माता पासे संयमनी अनुमति मागे छे. अन्ते काव्यनी पूर्तिमां कवि जसवंतजीनी दिक्षानी संवत, पोतानी थोडी गुरुपरम्परा, काव्य रचनानी संवत तथा पोताना नामने दर्शावी काव्य पूर्ण करे छे.

प्रस्तुत काव्यमां लोंकागच्छना रूपऋषिनी परम्परामां थयेला वरसिंहऋषिना शिष्य जसवंत ऋषिनी दिक्षानुं वर्णन कर्युं होई कर्ता तेमनी ज परम्पराना कवि होवानुं अनुमान करी शकाय. लोंकागच्छनी परम्परामां गंगमुनि (गांगजी) नामना ऋषि थया छे. जेमनी परम्परा नीचे मुजब छे.

रूपऋषि - जीवऋषि, जसवंतऋषि, रूपसिंहऋषि - दामोदरऋषि - अने कर्मसिंहऋषि - केशवऋषि - तेजसिंहऋषि - कान्हऋषि - नाकरऋषि-देवजीऋषि - नरसिंहऋषि - लखमीसिंहऋषि - गांगजी ऋषि. तेमणे संवत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७६० आसपास धन्नानो रास, रत्नसार तेजसार रास इत्यादिक ग्रन्थोनी रचना करी छे. परंतु आ काव्य संवत् १६५९ मां रचायुं होई कर्ता गंगदास कवि गांगजीथी भिन्न होई शके अथवा लहियानी भूलथी १७५९ने बदले १६५९ लखायानो पण संभव छे.

लहियानी बेदरकारीथी केटलाक ठेकाणे पाठ अपूर्ण रही गयो छे. केटलेक ठेकाणे पाठ वाच्य होवा छतां अर्थनी स्पष्टता थई शकी नथी. तेथी ते पाठ अहिं ते ज रीते रजू कर्यो छे.

आ कृतिनी प्रत नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरिजी भण्डारमां संगृहीत झेरोक्ष विभागनी छे. मूळ प्रत भावनगर श्री श्रुतज्ञानप्रचारक सभाना भण्डारनी छे. प्रत आपवा बदल भण्डारना व्यवस्थापकोनो खूब खूब आभार.

शब्दकोश

१. कहनइ = पासे
२. जुहार = प्रणाम
३. यंग = यज्ञ
४. द्रवि = पैसा (द्रव्य)
५. वेधुं =
६. चोला = चोळा
७. सांलणां = कचुंबर, अथाणा
८. वरनी = सा(भा)तना उंची जातना ?
९. फूटरां = सुंदर
१०. फोफल = श्रीफळ
११. नीरवासी = पाणी थी भरेला
१२. त्रिपति = तृप्ति
१३. सफरां = मोंघा ?
१४. कभाय = अंगरखु, झभ्भो
१५. पछेवडी = पछेडी
१६. केसुय = केसूडो
१७. कोइल = कोयल
१८. प्रेमल = परिमल
१९. मि = मैं
२०. यामीउ = वाव्युं
२१. कमां कमां =
२२. छावित =
२३. निरवाणि = जरूरी
२४. परहरां = छोडी
२५. उतरां = उतरीश
२६. पुनयोः उन्नयो = आकाशमां ऊंचे चढी रहेलो (छवायेलो)
२७. लवइ = बोले
२८. परिसा = परिसह
२९. सुधं = सुघु = साचु
३०. प्राजि = -प्राज्य - घणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्री आचार्यजीना बार मसवडा ॥

(जसवंतजी)

अर्हं नमः

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

सकल सुबोध प्रदायनी, प्रणमुं कवीयण माय,
गुण गास्युं गरूआ तणा, सरसति तणइ सुपसाय ॥१॥
द्वादश मास श्री गुरू तणा, जे जगमाहि सार,
ते गास्युं सुमति करी, होइ ते जय जय[कार] ॥२॥
सोझितनयर सोहामणुं, मरूधर देस मझारि,
इंद्रपुरी परि दीपतुं, भूमंडलमाहि सार ॥३॥
परबत साह वहवारीया, वसि ते तेणि गामि,
तास तणइ घरि सूं(सुं)दरी, **सोहोदनां** एहवइ नामि ॥४॥
चतुर पणुं चितमाहि सदा, सीलि शिरोमणि जाणि(णी)
भगति करइ भरथारनी, बोलिइ अमृत वाणि(णी) ॥५॥
पुण्य(ण्ये) पेख्यो एकदा, चंद्रह स्वपन मझारि,
अनुक्रमइ सुत जनमीउ, इंद्र तणइ अवतारि ॥६॥
जस कीरति सहुइ भणइ, फईअर हरख अनंत,
सजन सहु हरखि भल्युं, नाम दीउ **जसवंत** ॥७॥
दिन दिन सुत दीपइ घणुं, जेम दीपइ दिन भाण,
आस्या पुरइ सजननी, **श्रीजसवंत** सुजाणु(ण) ॥८॥
विनय करी गुरुनो बहु, सुणीउ धर्मविचार,
कुमरिं सुध विमासीउ, ए संसार असार ॥९॥
घरि आवी जनु(न)नी कह्नइ[१], पहिलो करी जुहार[२],
अनुमति द्यो आइ तुम्हे, अम्हें लेसुं संयमभार ॥१०॥
वलतु जननी इम भणइ, कुमर प्रति सुवचन,
ते भवियण तुम्हे सांभल्यो, आणी निश्चल मन ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ राग सामेरी ॥

मागसिर मासज आवीउ, मांडस्युं मोटा यंग[३] रे,
अम्हे वीवाह करस्युं तुम्ह तणो, द्रवि[४] खरचस्युं मनि रंग रे,
[५]पुरण पदार्थ ताहरइ, सुख भोगवो सुविसेस रे,
वडपणि चारित्र लीजीइ, हजी अछउ तुम्हे लघु वेस रे.
कुंयरजी, इम किम सुत मन वाली उ रे, विषम संयमभार रे,
जसवंतजी, हजी अछउ तुम्हे कुमार रे, गुणवंतजी, सहोदरां माता इम वी(वि)नवइ रे

[कुंयरजी दुहा]

कर जोडी कुंयर भणइ, राचुं नही संसारी,
मन वेधुं[५] छइ माहरूं, वरवा संयम नारि ॥१॥
पोसमासि पोसीइ तन, चोला[६] करी भोजन रे,
सालणां[७] वरनी सा(भा)तनां[८], जमी इहां अन रे,
फूटरां[९] फोफल[१०] वावरो, रूडा नीरवासी[११] तमने भावि रे,
श्री साधुनइ संयोग, एहवो मिलइ को प्रस्तावि रे,

कुंयरजी दुहा - सायर जलथी अधिक पाय, अधिक आरोग्या अन्न,
क्षुधा न भागी माहरी, त्रिपति[१२] न पाम्युं तन ॥२॥

माह मासि सीत बहुली, शीतल वाइ वाय रे,
सफरां[१३] ते वस्त्र पहिरीइ, पहिरीइ चंग कभाय[१४] रे,
भइरव तणी पछेवडी[१५], बेवडी उढणि बाहिर रे,
तेणइ समइ श्रीसाधुनइ, परदेस करवउ विहार रे,

कुंयरजी दुहा - सीत सही मि अतिघणी, नरग त्रियंच मझारि,
ते दुख मिटाववा, माता नुं (तुं) अवधारि ॥३॥

फागुण मास ज आवीउ, वसंतनो कलोल रे,
केसुय[१६] केसर छांटणां, गुलालनो झाकमझोल रे,
भेला थई भोगी रमि, मन रागि गाय फाग रे,
ते उपरि श्रीसाधुनइ, मनसुं न धरवो राग रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंयरजी दुहा - ज्ञान फाग गाइसुं अम्हे, जिणवर आण धरंति,
पीडुं नही पर प्राणनइ, करूणा दिद(ल)इ वसंति ॥४॥

चैत्र मासउ आवीउ, मयण नउ विश्राम रे,
मोर्या ते तरूयर अंबना, स्वर सरल कोइल [१७]ताम रे,
प्रगट्या ते प्रेमल[१८] फु(फू)लना, पसर्या ते पुरण वास रे,
एणी ऋतिनां सुख भोगवो, पुरवो ते मननी आस रे.

कुंयरजी दुहा - कल्पवृक्षमि[१९] यामीउ[२०], सीचउ श्रीवरसिंघ,
कुसुम साधु गुण भोगवउं, वारं सर्व अनंग ॥५॥

वैशाख(खे)संयम दोहिलुं, ऋति[उ]स्रनो अति व्याप रे,
तरूण थइ सूर्य तपइ, झाल-लूयनो बहू ताप रे,
आग ते अंबर पहिरीय, कमां कमां[२१] छावित [२२]सार रे,
ए अद्यथा अनेक सुख, भोगवो निज परिवार रे,

कुंयरजी दुहा - काल अनंतो हुं रल्यो, न टल्ये(ल्यो) कर्मनो ताप,
श्री वरसिंघ गुरू सानधि, सीतल वरसुं आए(प) ॥६॥

जेठ मासि जल भर्यां, आभलां वहि आकास रे,
संचीया ते माला पंखीए, घरि मांडवा तेणि वास रे,
आलुसु एणी ऋति जागीया, उभरो ते मेहनो जाण रे,
तेणइ समइ श्री साधुनइ, आश्रय जाचवो निरवाणि[२३] रे,

कुंयरजी दुहा - आश्रय पाम्या सुरवर तणा, मानवना बहुवार,
आलस अंगथी परहरां[२४], उतरां[२५] तव पार ॥७॥

आसाढ(ढे) उनयो[२६] मेहुला, वरसइ ते धार अखंड रे,
[झब] झबक झबकइ वीजली, गाजतो अति प्रचंड रे,
मधुर स्वरि मोरा लवइ[२७], चातक पीउ पीउ नाद रे,
तेणइ समि परिसा[२८] उपजइ, ऊपजइ ते सहइ साध रे.

कुंयरजी दुहा - परवस मि परी[सा], बहु(हू) सह्या ते पूर्व कर्मि ।
काल अनंतो हुं रलो, ते ज्ञानीनइ गम्य ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावण मासज आवीउ, नदीइं ते बहुलां पूर रे,
गगनेथी वरसइ मेहलो, वादलि छायो सूर रे,
मारगि जल बहू खलहलइ, उपना बहूला जिं(जं)तु रे,
तेणइ समइ संयम दोहलू(लुं), पालता वछ अत्यंत रे.

कुंयरजी दुहा - जयणा करस्युं जंतुनी, सुभ प्रणामि माय,
संयम सुधुं पालिस्युं, गुरू वरसिंघ तणइ सुपसाय ॥९॥

भाद्रवो मासज आवीउ, आवुं पजुसण दिन रे,
आव्या ते याचक याचवा, स्वहस्ति कीऊइ पुण्य रे,
लीजइ ते लाहो धर्मनो, पहुचइ ते मननी आस रे,
निज पिताना प्रसादथी, वछ करउ ते लीलविलास ने.

कुंयर[जी] दुहा - याचक जीव ते छकायनो, मागइ ते अभयदान,
आस्या पुरू तेहनी, माता द्यो मुझ मान ॥१०॥

आसोज अति रली(लि)यामणो, आवुं दीवाली पर्व [रे],
रस कस बहूलां नीपजइ, सुखीयो था(थ)उ जग सर्व रे,
घरि घरि दीप उछव बहू सहू करइ ते जय जयकार रे,
सलूणा सुत तुझ वीनवुं, एणइ समइ सुख अपार रे.

कुंयरजी दुहा - संयम सुधं[२९] जे वहइ, तस नित्य नित्य दीपोछव होय,
सुख पामइ ते सासतां, तेहनइ दुख न प्रभवइ कोइ ॥११॥

कार्त्तिक मासज आवीउ, द्वादस मांहि सार रे,
श्रीपूज्य **सोजित** आवीया, तव होइ ते जय जयकार रे,
सजि थया **श्रीजसवंत**जी, लेवा ते संयम काज रे,
मोह मद तणां दल चूरीयां, तृष्णा ते कीधी त्याग रे,

कुंयरजी दुहा - कर जोडी **जसवंत**जी, आगे ते महाव्रत सार,
श्रीपूज्यजी श्व(स्व)हस्ते करी, सुप्यो ते संयम भार ॥१२॥

संवत **१६[सोल] उगणपंचासइ,** महा शुदि १३[तेरस] शनि रे,
उदया ते आरइ पंचमइ, संघनइ पोतइ पुण्य रे ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलसलो–श्री**जीवराजऋषिवर** प्रवर पंडित, तास पाटि श्रीपूज्य मुनि(नि) वरू,
क्षमासागर ज्ञानअ(आ)गर, सकल गुण संयमघरू ॥१॥

पाटि तेहनइ तिलकघोरी, **झांझण सुत** जगि सोहये,
षट्कायना रखवाल मुनिवर, रूपि त्रिभोवन मोहीया ॥२॥

तास पाटि प्राजि[३०] गुणे गाजि, छाजि **श्रीजसवंत** यती(ति),
परबतनंदन पाप निकंदन, वंदन सुरनर गुणपति ॥३॥

संयम सूरा ज्ञानइ पूरा, दयाधर्म दीपति बहू
महिमा ते मोटो मेरु समोवडि, एक जीभइ ते किम कह्या(हुं) ॥४॥

संवत **१६[सोल] उगणसठा** वर्षे, कार्त्तिक शुदि ७[सातम] समि,
सेवक **गंगदास** बे कर जोडी, वार वार च[र]लणे नभि ॥५॥

॥ इति श्री आचार्यजीना बारमसवाडा सम्पूर्ण ॥ शुभं भवतु ॥
बाइ पुजी पठनारथं (र्थं)

नेमि प्रसन्नचन्द्र स्मृति भुवन,
तलेटी रोड, पालीताणा

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रण लघु रचनाओ

सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

प्रथम रचना श्री रैवतकगिरिमण्डन श्रीनेमिनाथ भगवाननी यमकालङ्कार-बद्ध उपजातिछन्दोबद्ध संस्कृति स्तुति छे. श्री ऋषिवर्धनसूरि नामना जैन आचार्ये रचेली आ रचना १६मा शतकनी होय तेम सम्भवित जणाय छे. कृतिमां क्यांय संवतनो उल्लेख नथी. आ स्तुति साध्वी दिव्यगुणाश्रीजीए जूना डीसाना ग्रन्थभण्डारमांनी 'विशेषणवती' ग्रन्थनी प्रतिमांथी उतारो करी मोकली छे.

बीजी रचना मुनि विनयसागर रचित 'सिलोकानन्दकवित्व' नामे छे. आमां कविए पोतानी काव्यचातुरी सुपेरे प्रदर्शित करी छे. प्रियतमना विरहथी व्याकुल नारीनी उक्ति छे के "मारो कंत (प्रियतम) चाली गयो छे, अने तेना विरहनी अगनज्वालामां सळगी रहेली मारा माटे शीतल नीर, (शीतल) पवन, चन्द्रमा - आ बधां वानां दुःखदायी नीवडी रह्यां छे. चन्दननो लेप शरीरे लगाडुं तो ते अंगाराना दझाडता स्पर्श समो अनुभवाय छे." कवि सागरे आवी उपमा रची छे."

आ एक ज उक्तिने कविए जुदा जुदा छन्दोमां, जुदी जुदी भङ्गिमाओथी आलेखी छे : ६ दोहा, ६ सोरठा, १ पद्धडी छन्द, १ कुंडलिया, १ अडिल्ल, १ श्लोक (संस्कृत) अने १ कवित्त, आम कुल १७ पद्योमां आ एकज वात के उक्ति कविए वर्णवी छे. काव्यनी आवी चमत्कृतिनी मोज मध्यकालना जैन कविओए खूब लूंटी छे, ते आवी रचनाओ जोतां जणाई आवे छे. कर्ता पोताने 'कवि सागर' तरीके ओळखावे छे. तेमना समय विषे कोई संकेत नथी, पण १८मो शतक होवानुं अनुमान करीए तो खोटा पडवानी झाझी दहेशत नथी. आ रचना पण साध्वी श्री दिव्यगुणाश्रीजी तरफथी मळेली छे. थोडीक अशुद्ध रचना.

त्रीजी रचना गौतमगणधरनो रास छे. सं. १८३४मां बीकानेरमां जेमलजी ऋषिना शिष्य (?) ऋषि रायचंदे आ रास रच्यो छे तेवुं तेनी १२-१३ कडीओ परथी नक्की थाय छे. मारवाडीमिश्रित गुजराती रचना.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१)

आ. ऋषिवर्धनसूरिकृत
श्रीरैवतकमण्डन नेमिजिनस्तुति

समुल्लसद्भक्तिसुराः सुरासुराधिराजपूज्यं जगदंगदं गदम् ।
हरन्तमीहारहितं हि तं हितं, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥१॥

बिभर्ति यस्य स्तवनेऽवनेऽवनेरीशे रसं यद्रसना स ना सना ।
सिद्धेर्भवन्नन्ववरोऽवरो वरः, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥२॥

यशःपटस्य प्रभवे भवे भवेऽभवन् स्वभावप्रगुणा गुणा गुणाः ।
यस्यातिहर्षं सुजनं जनं जनं, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥३॥

जिगाय खेलिं तरसा रसा रसातिरेकजाग्रन्मदनन्दनन्दनम् ।
यो बाहुदण्डं विनयं नयं नयं, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥४॥

येनाङ्गराजी भयतो यतो यतोऽवगत्य तत्त्वं दुरितारितारिता ।
स कस्य नेष्टः सदयो दयोदयो, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥५॥

सुरा अपि प्रोन्नतया तया तया, रूपस्य यस्या मुमुहुर्मुहुर्मुहुः ।
यस्योग्रजाताप्यजनीजनी जनी, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥६॥

भवेऽत्र नाभा नवमेऽवमेवमे, जहासि तत् किंवदऽमाद माऽदमा ।
यं स्मेति भोज्या सहसाहसाह सा, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥७॥

वनेऽत्र दीक्षा जगृहे गृहे गृहे, स्थित्वाऽथ दत्त्वा कनकं न कं न कम् ?
संतोष्य येनाऽममताऽमताऽमता, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥८॥

धर्मस्य तत्त्वे भवतोऽवतो बतोद्यमो विधेयो जगदेऽगदे गदे ।
येनाङ्गिनां संयमिनामिनामिना, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥९॥

शरीरशोभाऽतिघना घना घना, प्रतापदीप्तिस्तरुणारुणारुणा ।
वाणी च यस्योल्लसिता सिता सिता, नेमिं स्तुवे रैवतके तकेतके ॥१०॥

तर्कव्याकरणागमादिचतुरस्फूर्जत्सुधासारवाक्
पूज्यश्रीयशकीर्त्ति[सूरि?]गुरुणा ध्यानैकतानात्मना ।
सूरिश्री ऋषिवर्धनेन रचिता, त्रैलोक्यचिन्तामणेः
श्रीनेमेर्यमकोज्ज्वला स्तुतिरियं देयात्सदा मङ्गलम् ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

श्रीविनयसागर कृत
सिलोकानन्द कवित्व

विनयसागरकृत दोहा :

शीतलनीर समीर ससिच्छवि आज भअे सब मो दुःखदाई
लागत अंगि अंगार सिउं चंदन हो, विरहानल झाल जराइ
कंत चले थइ आलिइ छइं उपमा **कविसागर** अइसी बनाइ
जाणत इह संसार मतु मनमत्थ, हुवे नइं होरी लगाइ. (१)

दोहा : शीतल नीर समीर, सहित लागत अंगि अंगाई ।
कंत चले थइ आलिइव जाणत इह संसार. (१)

सोरठा : हो विरहानल झालि मो दुःखदाई सब भअे
कंत चले थइ आलि, शीतलनीर समीर ससि. (१)

दोहा : चंदन हौं विरहानलइं लागत है अंगि झाल
शीतलनीर समीर ससि, कंत चले तइ आलि (१)

सोरठा : लागत अंगि अंगार, चंदन हौं विरहानलइं
जाणत इह संसार, कंत चले थइ आलिइअ (१)

दोहा : मनमथ होरी लगाइनइं, उपमा इसी बनाइ
शीतल नीर समीर ससि, कंत चलइ दुःखदाई. (१)

सोरठा : जाणत इह संसार कंत चले थइ आलिइ.
लागत अंगि अंगार, शीतल नीर समीर ससि. (१)

दोहा : मो दुःखदाइ सब भअे, कंत चले थइ आलि
शीतलनीर समीर ससि, हों विरहानल झालि. (१)

सोरठा : कंत चले थइ आलि जाणत इह संसार मो
लागत अंगि अंगार चंदन हौं विरहानलइ. (१)

दोहा : लागत अंगि अंगार सिउं, चंदन हुं दुःखदाइ
कंत चले थइ उपमा अइसी आलि बनाइ. (१)

सोरठा : अइसी आलि बनाइ, कंत बले थइ उपमा चंदन
हौं दुःखदाइ, विरहानल अंगारसिउं. (१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा : आज ससिच्छवि मो भअे, चंदन शीतलनीर
विरहानल होरी, ननुं(ऊनुं?) लागत अंगि समीर. (१)

सोरठा : चंदन शीतलनीर आज, ससिच्छवि मो भअे
लागत अंगि समीर विरहानल होरी मनुं (१)

पध्धडी छन्द :
सब आज भअे मो दुःखदाइ
विरहानल चंदन हौं जराइ,
ससि लागत अंगि मानुं अंगार
उपमा कवि जाणत इह संसार (१)

छन्द पाठावाधूआ(?) :
हौं झलि विरहानलि जराइ, अलि कंत वले हवइ
संसार जाणत इह मतुं मन अइसि, होरि लगाइ नइं
अंगार लागत अंगि चंदन उपमा ज बनाइ थइं. (१)

कुंडलिया (छन्द) :
शीतलनीर समीर ससि, लागत अंगि अंगार
कंत वले थइ आलिइब जाणत इह संसार
जाणत इह संसार, आज सब मो दुःखदाइ
उपमा अइसि बनाइ, बेडु सागर थइ नइ कवि
शीतलनीर समीर राजसिउं इब ससिच्छवि- (१)

गाथा (छन्द) :
शीतलनीर समीर ससिच्छवि मो दुःखदाई
आज तीअे सवि चंदन अंगि अंगार सु लागत
हौ विरहानल झार जरावत- (१)

श्लोक (छन्द) :
शीतं नीरं समीरं व मालांव समीरंतं शशिच्छवि
अहो राजन्न वेदाङ्गं, दुःखदा विरहानल (१) (?)

अथ शृङ्गारकवित्वं :
शीतलनीर समीरससिच्छवि आज भअे वद
मो सुखदाइ, लागत अंगि सिंगार जिउं चंदनउ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरहानल झाल हराइ, कंत मिले थइ आलिइ छइं, **कविसागर**
अइसी उप[मा] बनाइ, तारूणइ मनमथ हुवेनइं हौंरि जगाइ- (१)
(छ दोहा, छ सोरठा, पद्धडिया छन्द, कुंडलीया, गाहा, अड्डिल, कवित सिलोकानंद)

इति श्री विनयसागरमुनिविरचितं[सि]लोकानन्द कवित्वं सम्पूर्ण ।

(३)
श्री गौतम रास

नमः सिद्धं । दूहा ॥

गुण गाउ गोतमतणा लबधितणा भंडार ।
वडा सिख भगवंतरा जांणे जग संसार ॥१॥
प्रतीबोध्या प्रभू कने गणधर गौतमसांम ।
संजम पाली सिध हूया लिजे नित प्रते नांम ॥२॥

ढालः

तिरथनाथ त्रिभोवनधणी प्रभूसासणरा सिरदार ।
भगति किया भगवंतरी मनवंछितफल-दातारजी
समरां पण सिवसुखकारजी, सदा वरते जयजयकारजी,
प्रभू पोहता मुक्ति मझार जी, प्रभु थाप्या तीरथ च्यार जी,
च्यार संघ में सिरदारजी, गौतम नांमे गणधार जी,
ज्याने हो जो मारो नमस्कार जी, दिहाडामांहे दस वार जी,
श्री गौतमसांमिमां गुण घणा ॥१॥

सीलमा सोना सारीखा जी, सुंदर रूप सरीर ।
कनक कसोटी चढावियो भगवतिमे भांष्यो वीर जी,
दीठा हरखे हइयारो हीरजी, सामि सायर जेम गंभीर जी,
वलि क्षमदमउपसम धीर जी, ज्यारी वांणि मिठी जाणो खिरजी,
मीठो खिरसमूद्ररो नीर जी, षटकाय जीवारा पीर जी,
वीररा हूया तन वजीर जी, श्री गौतमसांमिमां गुण घणा ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गौरा ने घणु फुटरा जी, कंचन कोमल गात्त ।
देही ज्यारी दिपे अतिघणि, कही जाय केतरीक वात जी,
देवता पण कोण मात जी, रोगरहित काया हाथ सात जी,
सेवा कीधी दिन ने रात जी, पूछा कीधी जोडी दोनु हाथ जी,
कही जाय कठा लगे वात जी, ज्यारे वीरे माथे दीधो हाथ जी, श्री० ॥३॥

प्रथम संघेण संट्ठाण छे जी, सांमी घोरगुणे भरपूर
घोर ब्रह्मचर्ये भर्या, वली तपसी घोर करूर जी,
कायर पूरुष कंप जाय दूर जी, दीपति तपस्या करे करम चूर जी
वीररा हूया हकमी हजूरजी, माहरी वंदणा उगमते सूर जी, श्री० ॥४॥

अभिग्रह कीधा आकरा, जि विस्तार भगवती मांय ।
चार ज्ञान चौद पूरवी जी, वलि तेजुलेसा रही पिंडमाय जी,
दपट राखी क्षिमा मन लाय जी, उकडु बेठा सीस नमाय जी,
वीर सु नेडा अलगा न थाय जी, ज्यारि करणिमे कमीय न कांयजी,
श्री० ॥५॥

पूछा ज्या कीधी घणी जी, आंणी मन आणंद ।
श्रद्धा सांसो उपनो जी, कतोहल छे उछरंग जी,
वांद्या श्रीवीरजिणंदजी, पूछा देस प्रदेस ने खंध जी,
अनंतदर्सन त्रसलानंदजी, मेल्या सुत्रमे संधोसंध जी,
ज्याने सेवे सुर नर वृंदजी, जिम सोभे तारामें चंदजी, श्री० ॥६॥

सुत्र भगवतिमां पूछीओ जी, प्रष्ण छत्रीस हजार ।
अंग उपांगमे वलि पुछीया जी, प्रष्ण अनेक प्रकारजी,
तीरथनाथे काढ दिया लार जी, गोतमे लिया रदियमे धारजी,
जारी बुधिरो नहि पार जी, भवजीवांरा तारणहार जी,
घणा जीवासु कीयो उपगार जी, जाउ पूरुषारि बलीहारि जी, श्री० ॥७॥

इंद्रभूति मन चिंतवेजी, मोने क्यू नहि उपजे ग्यान ।
खेद पाया प्रभू देखने जी, बोलायो श्रीवरद्धमांन जी,
मनवंछित फल द्यै दान जी, गौतम उभो सनमूख आंण जी,
चित निरमल ज्यारौ ध्यांन जी, श्री० ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थारे ने मारे छे गौयमाजी, घणा कालरी प्रीत ।
आगे आपे भेला रह्या जी, रहि लोढ-व(क?)डाइनी रीत जी,
थे मोह कर्म लीयो जीत जी, आ केवल आडी भीत जी,
चिंता म करो एकसीत जी, थे सदा रहो नचिंत जी, श्री० ॥९॥

अब क्यू इण भव आंतरो जी, आपे दोनु बरोबर होय ।
वीरवचन श्रवणे सुणी जी, तव हरष घणो होय जी,
गुरु मोटा मलीया मोय जी, माहरे कमीय न रहि कोय जी,
खेद परो दीयो छे खोय जी, रया वीरने सांहमो जोय जी, श्री० ॥१०॥

सयमुख वीरे वखांणीओ जी, श्री गौतमने तेणी वार ।
माहरे तू सरीखो बीजो नही जी, पाखंडीयारो जीतणहार जी,
चर्चा वादी तरत तयार जी, हेत जुक्ति अनेक प्रकार जी,
चौद सहस साधु मझारजी, बीजा साधू सहु थारी लार जी,
हीयडे हूयो हरख अपारजी, श्री० ॥११॥
काती वदि अमावस्या जी, मुक्ति गया श्रीवरधमांन ।
इंद्रभुतीने तव उपनो जी, निरमल केवलज्ञान जी,
धरम दीयो नगर पूर गांमजी, पछे पोहता सीवपूर ठांम जी,
सीध कीधां आतमकांम जी, **ऋषि रायचंद** कीया गुणग्राम जी, श्री० ॥१२॥
जेमलजीरा प्रसादसुं जी, कीधो ए ज्ञान अभ्यास ।
संवत अढार चोतीसमे जी, नवमी सुद भाद्रवा मास जी,
ए कीधो गोतमनो रास जी, सुणजो सहू मन उल्लास जी,
पांम्यो अवीचल लीलविलास जी, **सेहेर विकानेर** चोमास जी, श्री० ॥१३॥

इति गौतमनो रास संपूर्ण ॥

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलहंसगणि प्रणीत

श्री मेघागणि निर्वाण रास

म. विनयसागर

मेघजी गणि के सम्बन्ध में निम्नांकित गीत में 'अह्म[दा]वादी चारित्र लीउजी' एवं 'गणिमेघा' लिखा है इससे सम्भवतः श्रीहीरविजयसूरि के शिष्य हो यह कल्पना की जा सकती है और ये स्थानकवासी सम्प्रदाय से मुक्त होकर मन्दिरमार्गीय समाज में दीक्षित हुए हो । इसीलिए यह कल्पना की गई है कि ये मेघजी ऋषि सतरहवीं शताब्दी के हों किन्तु, इस गीत में "विजयहंसगुरु पास" दीक्षा ग्रहण की, इससे स्पष्ट होता है कि ऋषि मेघजी से ये अलग हैं । इन दोनों गीतों में ऋषि शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है । अतः इन्हें भिन्न ही मानना श्रेयस्कर होगा ।

इस भास में कहीं भी संवतोल्लेख नहीं किया है, न दीक्षा ग्रहण करने का और न स्वर्गवास का । अतएव उनका समय निश्चित नहीं किया जा सकता। फिर भी यह निश्चित है कि अट्ठारहवीं शताब्दी का पत्र होने से ये अट्ठारहवीं शताब्दी में हुए होंगे । विजयहंस और विमलहंस इन दोनों के सम्बन्ध में 'पट्टावली-समुच्चय' मौन है ।

विजयहंस के पास दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् चातुर्मास नाणा में किया था और वहीं अनशन ग्रहण कर आत्मसिद्धि प्राप्त की थी और वैशाख सुदि १३ को इनकी स्वर्गवास हुआ था । नाणा के संघ ने वीर के मन्दिर में इनके चरण स्थापित किए थे और प्रतिदिन बहुत से नर-नारी वन्दन करने आते थे । इसमें एक विशेष बात यह है कि जोधिगशाह ने राणकपुर मन्दिर में रायणवृक्षके तले इनके चरण स्थापित किए थे ।

कवि कहता है कि चातक जिस प्रकार मेघ को कोयल जिस प्रकार वसन्त ऋतु को, मधुकर मालती पुष्प को, सती स्त्री अपने पति को, हाथी रेवा नदी को और मोर श्रावण मास की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार मैं छः ऋतुओ के बारह मासों में मेघ महामुनि का नाम जपता रहता हूँ । उनके नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के स्मरण से सब सुख प्राप्त होते हैं, मोक्ष भी प्राप्त होता है और पुत्रकलत्र का परिवार भी बढ़ता है ।

इस प्रति की साइज २५.५ x ११ है । प्रति पत्र पंक्ति १३ हैं एवं प्रति पंक्ति अक्षर लगभग ३३ हैं । लेखन अनुमानतः १८वीं शताब्दी ही है। इस कृति का चतुर्थ पत्र ही प्राप्त है ।

सरसति शुभमति मुझ दिउजी आपु वचन विलास ।
गणि मेघा गुण गावतां जी मुझ मनि पुहचइ आस ॥
मोहन मुनिवरूजी मेघ महा मुनिराय ।
नामइ नवनिधि संपजइजी सुरपति प्रणमइ पास ॥१॥ मोहन० आंकड़ी ॥
अम्ह[दा]वादि चारित्र लीउजी विजयहंस गुरु पासि ।
विहार करइ वसुधा तलइजी नाणइ आवइ चउमास ॥२॥ मोहन० ॥
नाणइ अणसण ऊचरी जी कीधा आतम काज ।
मासि वैसाख सुदि तेरस्यइजी पाम्युं सुरपुरि राज ॥३॥ मोहन० ॥
नाणइ श्रीसंघि पादुकाजी थापि वीर विहारि ।
प्रहि समि आवइ वंदिवाजी नित नित बहु नरनारी ॥४॥ मोहन० ॥
राणिगपुरि मेघपादुकाजी थापी जोधिगसाहि ।
रायणतलि रंगि करी श्रीसंघ पूजइ उछाह ॥५॥ मोहन० ॥
चातक चिति जलधर वसही जी किम कोइल सहकार ।
मधुकर मनि मालतइ वसइजी कुलवंति भरतार ॥६॥ मोहन० ॥
गयवर मनि रेवा वसइजी मोरां श्रावण मास ।
तिम मुझ मन तुझ नाम स्युंजी छइ ऋतु बारइ मास ॥७॥ मोहन० ॥
नाम जपइं महामुनिं तणउजी नित नित जे नरनारी ।
मनवांछित सुख सहू लइजी पामइ शिवपुर सार, पुत्र कलत्र परिवार ॥८॥
॥ मोहन० ॥
मेघ महामुनि नामनऊजी जाप जपुं निसदीस ।
मुझ मनि मेघ सदा वसइजी बोलइ विमलहंससीस ॥९॥ मोहन० ॥

इति श्री गणिश्री मेघा भास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रति में मेघमहामुनि का एक ओर निर्वाण भास है, जो की अपूर्ण है । वह निम्न है :

मेघमहामुनि वरतणा सखी गावहे २ नित गुण सार ॥ मेघ० ३॥
कुंकुमचन्दन गुहली सखी साथी इहे २ साली पुरावी ।
मेघ महामुनि सीसनइ सखी आविहे २ भावि वधावी ॥ मेघ० ४॥
काम कुंभ चिन्तामणि मुझ भणई हे २ आव्या आज ।
मेघमहामुनि नामथी मुझ सरिया हे २ वंछिय काज ॥ मेघ० ५ ॥
दिन दिन दौलत अतिघणी जस नामइ हे २ बहुपरिवार ।
विमलहंस भगती भणई मेघ नामइए नित जयकार ॥ मेघ० ६॥

इति गणि श्री मेघा निर्वाण भास

कवि कहता है कि इनके स्मरण से कामकुम्भ, चिन्तामणि आदि प्राप्त हो जाते हैं और विमलहंस भक्ति से मेघ का गुणगान करता है ।

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री कुशलवर्द्धनरचित

श्री विजयहीरसूरि स्वाध्याय

म. विनयसागर

स्फुट पत्र की साइज २५.८ x ११ है। कुल पंक्ति १४ है। प्रतिपंक्ति अक्षर लगभग ५३ हैं। लेखन १८वीं सदी है। पद्य २ का तीसरा चरण और पद्य ५ का प्रथम चरण काटा-पीटा के कारण अस्पष्ट आ हो गया है। प्रारम्भ में अज्ञात कर्ता कृत महावीर तप स्वाध्याय है।

रचनाकार कुशलवर्द्धन है। 'पभणइ तेहनू सीस' शब्द से कुशलवर्द्धन का शिष्य प्रकट होता है अथवा कुशलवर्द्धन हीरविजयसूरि का शिष्य है। कुशलवर्द्धन के सम्बन्ध में कोई ज्ञातव्य जानकारी नहीं है।

इस हीरविजयसूरि स्वाध्याय में आचार्यश्रीजी के गुणगणों का वर्णन किया गया है और तपागच्छ के नायक बतलाये गये हैं। ओस-वंशीय कुंरा नाथीपुत्र थे। बालवय में दीक्षा ग्रहण की थी। निर्मल चारित्र का पालन करते हुए गौतम, सुधर्म, जम्बू के समान उज्ज्वल कीर्ति वाले युगप्रधान हीरविजयसूरि भक्तों के संकट दूर करते हैं और शिव-सुख सम्पत्ति के दायक हैं एवं इसके साथ ही साधुओं के गुणगणों का वर्णन करते हुए उनको सागर सम गम्भीर, अन्तरङ्ग वैरियों से दूर, शोक सन्ताप, रोग-शोक से दूर, भव्यों का मनोवाञ्छित पूर्ण करने वाले बतलाया गया है और जङ्गम तीर्थ की उपमा दी गई है।

प्रस्तुत है हीरविजयसूरि स्वाध्याय :

पणमिय पास जिणिन्द देव मनवंछितकारी ।
समरिय सरसती देवी माय मुझ मति दिउ सारी ॥
हीरविजय सूरिन्दराय तपसंयमधारी ।
थुणस्युं तपगच्छ तणउ राय लहुवय ब्रह्मचारी ॥१॥
सयल साधु सिर शेखरुए समता रस भण्डार ।
विनयकरि ..... अन्ते पामइ भव पार ॥२॥
गाम नगर पुर देसि देसि भविअण पडिबोहइं ।
निरुपम समकित सार बीज जाणी आरोहिइं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमीअ समाणि विशाल वाणि कविजन मन मोहिइं ।
निर्मल बुद्धि तणुं निवास सुर गुरु जिम सोहइ ॥३॥
सोमगुणे करी दीपतु ए जाणे पूनिम चंद ।
तपतेजइ दीपइ सदा भासुर जेम दिणिंद ॥४॥
नवनिधान ..... (?) वाडि रूडि परिपालइं ।
चउदह विद्या रयणरासि परि इहि सम्भालइ ॥
विविध देश ऊपना भव्य समझावी लावइ ॥५॥
दूषमकालि अवतरिउ ए धर्मचक्रवर्ति एह ।
सुन्दर गणधर पदधरु मुझ मनि नहीं संदेह ॥६॥
गोअम सोहम जम्बु पमुह पूरव रिषि तोलइ ।
तुम्ह कीरती ऊजलि देखी कुमतीइ सवि डोलइ ॥
सयल राय तुम्ह नमइं सुरपति गुण बोलइ
सायरसम गम्भीर चित्त परदोस न खोलइ ॥७॥
रूप अनोपम तुम तणुं ए जोतां हरख अपार ।
युगप्रधान सोहाकरु जय जय जगदाधार ॥८॥
जो तुं आणा धरइ सोवि संसार न झूरइ ।
क्रोधादिक जे अन्तरङ्ग वैरी सवि मूरइ ॥
रोग शोक संताप ताप भविअणना चूरइ ।
जो तुम्ह सेवा करइं तास मनवंछित पूरइ ॥९॥
शिव सुख सम्पद दायकू ए दर्शन तोरु सामि ।
अलिअ विघन दूरइ टलइ मुनिवर ताहरइ नामि ॥१०॥
ओसवंश शृङ्गारहार कुंरा सुत सुणिइ ।
माता नाथी ऊयरि हंस सुरतरू सम गणीइ ॥
थावर तीरथ सिद्धक्षेत्र जङ्गम ए भणीइ ।
पूज्य तुम्हारा गुण अनेक मइ किणि परि थुणीइ ॥११॥
कुशलवर्द्धन पण्डित गुरुए पभणए तेहनु सीस ।
हीरविजयसूरीसरू प्रतिपउ कोडिवरीस ॥१२॥

इति श्री हीरविजयसूरीश्वर स्वाध्याय सम्पूर्णः

C/o. १३ ए, मेन गुरुनानक पथ, मालवीयनगर, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्विंशति-जिन-स्तुति के प्रणेता चारित्रसुन्दरगणि ही हैं

म. विनयसागर

बचपना, बचपना ही होता है । इसमें भी बालहठ हो तो उसका तो कहना ही क्या ? बाल्यावस्था में बालहठ इस बात का हुआ कि पुस्तकों पर सम्पादक के नाम पर मेरा नाम होना चाहिए ! ज्ञान कुछ भी नहीं था । न व्याकरण का ज्ञान था, न साहित्य का और न ही सम्पादन का, था तो सिर्फ हठ था । उस समय मैं सिद्धान्तकौमुदी पढ़ रहा था । ज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं थी । अवस्था १६-१७ वर्ष की थी ।

हाँ, इतः पूर्व संवत् २०४२-४३ में श्री नाहटा-बन्धुओ के सम्पर्क में रहकर हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपी पढ़ने और मूर्तिस्थ लेखों की लिपी पढ़ने का अभ्यास जरूर हो गया था । साथ ही हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का भी लोभ पैदा हो गया था । इसी कारण खोज करते हुए मुझे तीन हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियाँ प्राप्त हुई जो कि अप्रसिद्ध थी । जिनके नाम इस प्रकार हैं :- श्रीसुन्दर रचित चतुर्विंशति-जिन-स्तुतयः, पुण्यशील गणि रचित चतुर्विंशति-जिनेन्द्र-स्तवनानि और पद्मराजगणि रचित भावारिवारण-पादपूर्ति-स्तोत्रम् । बालहठ के कारण इन ग्रन्थों का सम्पादन प्रारम्भ किया, जबकि मुझे पदच्छेद इत्यादि का भी ज्ञान नहीं था । तीनों लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई, तो आत्मसन्तुष्टि हुई कि मैं सम्पादक बन गया । जब ये पुस्तकें संशोधन के लिए स्वर्गीय गणिवर्य पूज्य श्री बुद्धिमुनिजी महाराज को भेजी गई तो उन्होंने संशोधित कर मुझे वापिस भिजवाई । अशुद्धियों का बाहुल्य देखकर मैं हताश हो गया, किन्तु फिर भी प्रयत्न चालू रहा ।

श्रीसुन्दर रचित चतुर्विंशति-जिन-स्तुतयः की हस्तलिखित प्रति श्रीवल्लभगणि लिखित थी और वह संस्कृत अवचूरि के साथ थी । ग्रन्थकार के नाम के आगे श्रीसुन्दरगणि लिखित था । यह श्रीसुन्दरगणि कौन थे, ज्ञात नहीं । इस पुस्तक की भूमिका स्व. श्री अगरचन्दजी नाहटा ने सप्रेम लिखी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । इसमें उन्होंने अन्य कृति न मिलने के कारण श्रीसुन्दर की ही कृति माना और युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि की शिष्य परम्परा में स्वीकार कर प्रतिपादन भी कर दिया ।

श्रीवल्लभगणि लिखित प्रति की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है :-

"इति श्रीसुन्दरः-पण्डितप्रकाण्ड श्रीसुन्दरमुनिविरचित श्रीमत् चतुर्विंशति-जिनाधिपति-स्तुति-वृत्तिः समाप्ता ॥ लिखिता पं. श्रीवल्लभ-गणिना ॥श्रीः॥"

इस यमकमय स्तुति का आद्यन्त इस प्रकार है :-

युगादिदेव स्तुतिः ।

नित्यानन्तमयं स्तुवे तमनघं श्रीनाभिसूनुं जिनं,
विश्वेशं कलयामलं पर-महं मोदात्तमस्तापदम् ।
नित्यं सुन्दरभावभावितधियो ध्यायन्ति यं योगिनो,
विश्वेऽशंकलयामलं परमहं मोदात्त-मस्तापदम् ॥१॥

x x x

श्रीवीर-जिनस्तुतिः ।

वीरस्वामिन् ! भवन्तं कृतसुकृततति हेमगौराङ्गभासं,
ये मंदन्ते समानन्दितभविकमलं नाथ ! सिद्धार्थजातम् ।
संसारे दुःखमस्मिन् जितरिपुनिकरा संश्रयन्ते घनापा-
येऽमन्दं ते समानं दितभाविकम-लं नाथ सिद्धार्थजातम् ॥१॥

लेखन पुष्पिका में श्रीसुन्दरमुनि विरचित ही लिखा है और लेखन में अपना नाम श्रीवल्लभगणि लिखा है । श्रीवल्लभगणि श्रीज्ञानविमलोपाध्याय के शिष्य हैं और इन्हें संवत् १६५४ के पूर्व ही गणिपद प्राप्त हो चुका था, अतएव यह संवत् १६५४ के पश्चात् की ही लेखन प्रशस्ति है ।

समय का प्रवाह अबाध गति से चलता रहा । इस वर्ष मुनिश्री सुयशचन्द्रविजयजी ने संकेत किया कि इस कृति के कर्ता चारित्रसुन्दरगणि हैं, प्रति प्राप्त हुई है । इसकी फोटोकॉपी भी इन्होंने भेजी । पुस्तक का आद्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवलोकन करने पर भी मूल में ग्रन्थकार का नाम प्राप्त न हो सका । किन्तु वीरजिनस्तुति के चतुर्थ पद्य में 'सुन्दराचारसारा' शब्द प्राप्त होता है । इसमें प्रयुक्त 'आचार' शब्द से चरित्र ग्रहण करने पर और सुन्दर शब्द चारित्र के बाद ग्रहण करने पर चारित्रसुन्दर सिद्ध होता है ।

मुनिश्री सुयशचन्द्रविजयजी को प्राप्त प्रति १६वीं सदि की लिखित है । अवचूरि सहित है । लेखन संवत् नहीं दिया है । पत्र संख्या ७ है, पंचपाठ है किन्तु कई पत्र अग्निभक्षित हैं और किनारे भी खण्डित है । लेखन पुष्पिका का प्रकार दी गई है :-

"इति श्री बृहद्तपोगच्छनायक भट्टा. श्रीरत्नसिंहसूरि शिष्योपा. श्री चारित्रसुन्दरगणिविरचिताः सुन्दरस्तुतयः सम्पूर्णा । ग्रन्थाग्रन्थ १९६ श्लोकः ॥छा॥ ग्रन्था ५२७ सर्व" इसमें स्पष्टतः उपाध्याय श्री चारित्रसुन्दरगणि विरचित लिखा गया है । किन्तु, अवचूरि के अन्त में "सुन्दरस्तुत्यवचूरिः" ऐसा लिखा है । इसमें श्रीसुन्दर शब्द ही लिखा गया होगा । ऐसा सम्भव है कि श्रीवल्लभोपाध्याय ने अपने नाम के समान ही 'श्री' दीक्षानाम और 'सुन्दर' नन्दीपद के समान ही इसके कर्त्ता भी श्रीसुन्दर माना हों । इसीलिए श्रीवल्लभ ने 'श्रीसुन्दर' कृत ही लिखा है । अन्य किसी भी स्थान पर यह नाम भी प्राप्त नहीं होता है ।

इसकी सोलहवीं सदी की एक प्रति मुझे प्राप्त हुई है जो कि मूल गात्र है । इसमें स्पष्टतः चारित्रसुन्दरगणि रचित लिखा है । इससे स्पष्ट होता है कि यमकबद्ध स्तुति चारित्रसुन्दरगणि की ही है । मूल पाठ ही है, इसमें अवचूरि नहीं दी गई है । सम्भवतः यह अवचूरि स्वोपज्ञ ही हो । श्री चारित्रसुन्दरगणि बृहत् तपागच्छीय रत्नसिंहसूरि के शिष्य थे । जिन्होंने कि संवत् १८४७ में शीलदूत नामक काव्य की रचना की थी । आचारोपदेश आदि भी प्राप्त हैं ।

अतएव यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि इस कृति के कर्त्ता चारित्रसुन्दरगणि तपागच्छीय है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन

म. विनयसागर

श्री अमृत पटेल ने अनुसन्धान अंक ४८ में पूज्य मुनिराज आगम प्रज्ञ मुनिश्री जम्बूविजयजी महाराज से प्रसादी के रूप में प्राप्त ताड़पत्रीय प्रति के आधार से खरतर पूर्णभद्रगणि विरचित "आणंदादिदस उवासगकहाओ" ग्रन्थ का सुन्दर सम्पादन कर प्रशस्त कार्य किया है। परवर्ती पट्टावलीकारों ने श्री जिनपतिसूरि को "षट्त्रिंशद्वादविजेता" लिखा है। उस प्रति की लेखन प्रशस्ति में श्रेष्ठी क्षेमन्धर का नाम आया है। श्री जिनपतिसूरिजी (आचार्यकाल संवत् १२२३ से १२७०) का जीवन चरित्र जिनपालोपाध्याय (दीक्षा पयार्य १२२५ से १३१०) ने संवत् १३०७ में रचा है। उसमें लिखा है "संवत् १२१७ मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने श्रावक क्षेमन्धर नामक धनीमानी सेठ को प्रतिबोध दिया ॥" (खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास, पृ० ५४) "साधु क्षेमन्धर सेठ अपने पुत्र प्रद्युम्नाचार्य को वन्दना करने के लिए वादी देवाचार्य की पौषधशाला में पहुँचे।" अर्थात् प्रद्युम्नसूरि सेठ क्षेमन्धर के पुत्र थे। (खरतरगच्छ का बृहद् इतिहास, पृ. ९८)

साध्वी समयप्रज्ञाश्रीजी सम्पादित विविधकविकृत त्रण गेय रचनाओ, अंक ४८ में प्रकाशित हुई। उसमें सुमति-कुमति वादगीत के कर्त्ता लालविनोदी की कल्पना की है कि लालविजयजी होंगे। किन्तु, ये उत्तर प्रदेश के रहने वाले लालविनोदी हैं और दिगम्बर हैं। इनकी खड़ी बोली में गेय पद विपुल मात्रा में मिलते हैं।

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृक

भोजनविच्छित्तिः

सं. साध्वी समयप्रज्ञाश्री

जूनी गुजराती भाषामां भोजन विधिनुं वर्णन करती आ एक रसिक रचना अत्रे आपवामां आवी छे. 'भोजनविच्छित्ति' नामे आ रचना कर्ता के लेखक अज्ञातप्राय छे.

भोजनमण्डपना वर्णनथी शरु थती आ रचनामां क्रमशः भोजनोचित वासण-बाजठ वगेरेनुं, पीरसवा आवनारी स्त्रीओनुं मजेदार वर्णन थयेल छे. भोजनना थाल वगेरे गंगोदकथी परवाळेला होय छे; गंदा, एंठा के मेला नहि. धोवानुं पाणी पण गंगाजळ, गमे ते पाणी नहि. पीरसनारी स्त्रीओ पण १६ शणगार सजेली, वळी लघुलाघवी अर्थात् सामाने खबर पडे ते पहेलां पीरसी पीरसीने आगळ चाली जनारी एवी स्फूर्ति धरावती ते स्त्रीओ छे. ते पाछी उदार होय, आपवामां खुश थती होय, तेमनो हाथ 'दोलती' - शुकनवंतो होय; ए हाथे लेवुं गमे अने ते भारे होंशीली तेथी धसमसती - दोडी दोडी आवे पीरसवा माटे.

पीरसवानो क्रम पण समजवा जेवो छे : सौ पहेलां फलहल कहेतां फळो अने मेवा पीरसवामां आवे छे. फळो, अने ते करतांय मेवानां द्रव्योनां नामो वांचतां ज मों पहोळुं थई जाय !

ते पछी आवे पकवान्ननो वारो. विविध पक्वान्ननां नामो वांचतां तो मोंमा पाणी ज छूटे ! परंतु लाडूनां नामो अने प्रकारनुं वैविध्य तो वांचीने ज तृप्त करी मूके छे.

ते पछी 'शालि' एटले चोखा (पात) पीरसाय छे. 'जे जीमीइं विचालि' एटले भोजनमध्यमां ते समये भात लेवानी प्रथा होवी जोईए. चोखाना पण केवा - केटला प्रकारो देखाडेल छे ! केटलांक नामो तो साव नवां ज लागे.

ए चोखानी चोक्खाईनी वात पण मजा पडे तेवी छे. जुओ - तेने खांडे छे नबळी स्त्री, अर्थात् घरमां बेठां बेठां घरडी स्त्रीए ते खांड्या हशे. तेने छडवानुं काम सबळी कहेतां सशक्त बाईओ करे छे. तेने शोधनारीनो हाथ हळवो होय, तो वीणे तेना नख मोटा-सारा होय, जेथी कांकरा वगेर तरत वीणी लेवाय. स्त्रीना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमुक नख मोटा केम राखवामां आवे छे, तेनुं कारण कदाच आ वातमां जडे छे. ए चोखा ओरनारी स्त्री उत्तम होय, तो तेने ओसाववावाळी स्त्री सुघड होय - फूवड नहीं. अने सुजाण-रसोईनी कलामां पारंगत स्त्री ते चोखाने (सीझे एटले) ऊतारे. आवा चोखाना भात पीरसाया छे.

ए पछी आवे छे दाळ. विविध जातनी दाळनां नामो आपणी रुचिने उद्दीप्त करी मूके खरी. दाळ पछी अनेक प्रकारनां घी पीरसातां होय छे. सुगन्धी घी सदा आदेय-खावा लायक होय ज, पण नाक पण (तेनी सुगन्धीने) पीतुं ज रहे छे.

अपोषण पते एटले रोटली-पोळीनो वारो आवे छे.-

"फूकनी मारी फलसै जाइं,
एकवीसनो एक कोलीउ थाइं"

आ वाक्यमां ए पोळी केवी पातळी-बारीक अने सुंवाळी होय तेनो अंदाज मळी रहे छे.

रोटली साथ जोईए शाक. अहीं शाकनां अनेक अनेक नामो आलेख्यां छे. एमां 'मुंठ कचराना' क्या शाकनुं नाम छे ते समजातुं नथी. 'धपुंगारीया' ए कई क्रियानुं सूचन करतो शब्द हशे, ते खबर नथी. शाक साथे ज भाजी पण अनेकविध पीरसाय छे. आ कोई जैन धर्मने लगता उत्सव-जमणनुं वर्णन नथी, तेथी आमां मूळानी भाजी के सूरणनी वात होय तो उछळी पडवा जेवुं नथी.

हवे आवे छे अथाणां, अने ते पछी विविध प्रकारनां वडां पीरसातां जोवा मळे छे. छेल्ले त्यां मरचुं पण पीरसाय छे. एवुं मरचुं के मोंमां घाले के चम-चम थाय, पण तुरत ज गळे ऊतरी जाय. भोजननी उत्तमता माटे प्रयोजेल एक वाक्य तो जबरुं लख्युं छे के "घणुं सुं वखाणीइ ? देवता पणि खावानै टलवलै !"

अे पछी 'पलेव' पीरसाय छे. पलेवनो अर्थ खबर नथी पडती. कदाच 'धाणी' होय तो होय. पांच जातनी तो पलेव पीरसाय छे ! मुखशुद्धि माटे हशे कदाच. ते पछी पीवानां पाणी मूकायां छे. पाणीथी मुखशुद्धि थतां तरत प्रथम दहीं अने पछी छाशनां धोळ तथा करबा रजू थाय छे. अहीं 'छछनालायै' शब्द छे तेमां समजण पडी नथी. छछ ए छाछ-छाशनुं सूचन करतो शब्द हशे ?

आ पछी कोगळा (चलु) करवा माटे पाणी अपाय छे ते पण केटली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातनां छे ! अने ते विधि पत्या पछी आवे छे 'मूंछण' आनो अर्थ प्रतना हांसियामां तेना लेखके ज लखे ल छे : 'मुखवासः' ते सोपारी प्रमुख मुखवास, अने छेल्ले पानबीडां आपीने भोजनक्रिया पूरी कराय छे.

ए पछी पधारेल महेमानोने पहेरामणीमां भातभातनां वस्त्रो अर्पण थाय छे. केसर-चन्दननां छांटणां करीने तेल-अत्तरनां विलेपन लगावाय छे ए पछी ३२ जातिनां घरेणां (ग्रहणा) उपहाररूपे अपाय, तेनां केटलांक नामो आपेल छे. आ रीते कुटुम्बनुं सामीवच्छल (जमण) कर्या बाद छेल्ले विविध जातिनां पुष्पो तथा फूलनी माळाओ सूंघवा तथा पहेरवा अपाय छे. छेक छेल्ले (विदाय वेळाए) हाथमां फळ आपे छे अने शीख (रूपिया) पण आपे छे. आम भोजनविधि पूरो थाय छे.

पूज्यश्रीए बेत्रण वर्ष अगाऊ थोडांक छूटक पानां शीखवा तथा लखवा माटे आपेलां. तेमां ३ पानांनी आ प्रतनी झेरोक्स पण हती. आ प्रत उपर कच्छ-मांडवीना खरतरगच्छना ज्ञानभण्डारनो नम्बर तथा सिक्को छे. तेथी आवुं शिक्षण आपनारुं ज्ञान वधारनारुं कार्य करवा माटे आ प्रत आपनार पूज्यश्रीनी अने मांडवीना ज्ञानभण्डारनी हुं हंमेशां ऋणी रहीश. भूलचूक थई होय तो सुधारी लेवा विनंति करुं छुं.

★

थोडाक अजाण्या शब्दोनी नोंध

रमणीरक	रमणीय
आंडणी	बाजोठ (?)
काटकी	काट नी
तितरइ	तेटलामां
प्रीसणहारी	पीरसनारी
लघलाघवी	लघुलाघवी - चपलता
फलहल	फळ - मेवो वगेरे
प्रीसइ	पीरसे छे.
सखरा करणा	फलजाति
पूजै	पूगे - पहोंचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोडि	कोड – मनोरथ
सिलेमी	सुलेमानी (?)
गिरी	गर–गर्भ
परिघल	भरपूर
निबली	नबळी
हलवइ	हळवे
काबली चिण	काबूली चणा
सुरहा	सुरभि–सुगन्धी
मुंठकचरा	–
सरघू	सरगवो
धुपंगारीया	धूप–अंगारिया अर्थात् सगडीमां बळीने भडथुं थयेल (?)
सोआ	सूवा (नी भाजी)
वथूया	वत्थुला (भाजी)
सिना	भीना (?)
पलेव	–
छछनाला	–
पांडल पाणी	पाटलानी सुगन्धवाळुं (?)
पांभडी	पामरी–पीताम्बरी
अटाणं	–
चोवा	चूवो
गहणा	घरेणां

★

अत्र पुनः ग्रन्थान्तराणुसारेण भोजनविच्छित्त(त्ति)प्राहः

मांड्यो उत्तंग तोरण मांडवउं, तुरत बैसवानो नवो
जे रमणीक आंगणो, ते तो नील रतनतणो ।
सखरा मांड्या आसण, तिहां बैसता किसी विमासण
आगइ मूंकी सोनानी आंडणी, ते किम जाइयै छांडणी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपरि सोनानी थाल, अत्यंत घणुं विसाल
विचमै चउसठि वाटकी लिगार नही जाति काटकी ।
गंगोदक दीधा थाल कचोला नै हाथ पवित्र कीधा
सगली पांति बैठी तितरइ प्रीसणहारी पइठी ।

ते केहवी–

सोल शृंगार सज्या बीजा काम तज्या
हाथनी रूडी, बिहुं बांहे खलकै चूडी ।
लघलाघवी कला मन कीधा मोकला
चित्तनी उदार, अति घणुं दातार ।
दोलती हाथ, परमेसर देजो तेहनो साथ
धसमसती आवी सगलारै मन भावी ।
तो पहिलुं फलहल प्रीसइं, ते कहेवो– सगलारां हीया हींसइ ।
पाका आंबानी कांतली, ते बूराखांडसुं भरी अनै पातली
पाका केला, ते वली खांडसुं कीधा भेला ।
सखरा करणा ते वली पीलावरणा
नीली नारंगी रंगइ दीसता सुरंगी ।
नीली रायण ते पिण प्रीसी भायण
दाडिमनी कली खातां पूजे रली ।
निमजा नै अखोड खातां पूजैं कोडि
द्राख अनै बिदाम केई कागदी केई स्याम ।
सिलेमी खारिक अनै खजूर, ते पिण प्रीस्या भरपूर
नालेरनी गिरी मालवी गुंदसुं भरी ।
नीबूं खाट्टा अनै मीठा एहवा तो किहांई न दीठा
चारोली नै पिसता लोक जिमैं हसता ।
वले सेलडी अनै सदाफल तेपिण प्रीस्या परिघल
हिवै पकवान आणै ते केहवा वखाणै ।
सतपुडा खाजा तुरत कीधा ताजा
सदला नै साजा मोटा जाणै प्रसादना छाजा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पछै प्रीस्या लाडू जाणे नान्हा गाडू
कुण कुण ते नांम जिमतां मन रहै ठांम ।
ते केहेवा लाडू ? – मोतीया लाडू, दालिया लाडू
सेवेइया लाडू, कीटीया, – तिलरा०, मगरीया लाडू,
झगरीया लाडू, सिंहकेसरीया लाडू, चूरमाना लाडू ।
वली बीजा आण्या पकवान, जीमतां वाधइं मुखनो वांन
कुण कुण जाति, नवी नवी भांति ।
दहीवडां गुंदवडी,
फीणा सफरासोट मांहे नही कांइ खोट
पातली सेव, प्रीसी रुडी टेव ।
तत्ता उभा(ना?) घेवर तल्यां गुंद, कुंडलाकृत जलेबी, सीरा लापसी ।
मीठो मगद्द, आछो माल निगद्द
खांडनो चूरमो साकरनो चूरमो ।
पछइं प्रीसी साली, जे जीमीइं विचालि
ते कुण कुण जात खातां उपजै उमेद ।
सुगंधसालि, सुवर्णसालि, धउली साल,
कलम साल, पीली साल, सुध सालि, कौमुदी साल,
कलमसालि, कुकण सालि, देवजीरी साल,
रायभोग साल, नीली सालि ।
वली साठी चोखा, अखंड चोखा, एवा चोखा जाणवा–
निबलीयै खाड्या, सबली स्त्रीयै छड्या,
हलवइं हाथै सोध्या, नखवती स्त्रीइ वीण्या,
उत्तमस्त्रीयै ओर्या, सुघड स्त्रीयै, ओसाया–
सुजांण स्त्रीयै उतार्या, एहवा अणीयाला चो० (चोखा)
सुगंध सरस फरहरा कूर प्रीस्या ।
वली हिवइ दालि आवै । ते केहवी ?–
मंडोवरा मगनी दालि, काबली चिणरी दालि,
गुजराती तूअरनी दालि, उडदनी दालि,
झालिरनी दालि, मठनी–मटरनी–मसूरनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरणइ पीली परिणामै सीयली ।
वली परिबल घी प्रीस्या । पणि ते केहवा घी ?-
आजना ताव्या घी, गायना घी, मजीठवरणीया घी,
सुरहा घी नाक पीयै घी सदा आदेय घी
एहवा घी प्रीस्या ।
हिवइ पोली प्रीसी । पणि ते केहवी पोली ?-
आछी पातली पोली, घी मांहें झबोली,
फूकनी मारी फलसै जाइं
एकवीसनो एक कोलीउ थाइं ।
हिवै साक आवै । पणि ते केहवा साक ?-
नीली छमकाई डोडीना साक, टींडोराना साक,
टींडसीना साक, चीभडाना०, कोलाना०,
कारेलाना साक, कंकोडाना०, करमदाना०
कालिंगडाना०, केलाना०, आरीयाना०,
तूरीयाना०, मुंठकचराना०, खरबूजाना०,
मतीराना०, मोगरीना०, नींबूयाना०,
आबोलिना०, वाल्होरना, चउराफली०,
गवारफलीना०, सरघूनी फली, सांगरी,
काचरी, कयरना०, आवलाना०, फोगना०,
नीलीपीपरना०, राईना खाटा साक,
मीठा साक, खारा साक, तल्या०, वघारीया०,
धुपंगारीया, छमकाया०, एहवा साक जांणवा ।
वली प्रीसै भाजी ते उपरी सहू को हुइ राजी ।
ते कुण कुण जात ? - सरसवनी भाजी,
सोआनी भाजी, मूलानी० वथूयानी०,
चिणानी०, चंदलेवा०, मेथीनी०
एहवी अनेक प्रकारनी भाजी जांणवी ।
हिवइ अथाणा प्रीसै ।। पिण ते कहेवा ?-
मिरचना अथाणा, नान्हा केरना०, बांसना०,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्वती राईना । एहवा अनेक प्रकारना अथाना जांणवा ।
हिवै वडानो साक आवै । ते केहवा वडा ?-
मरिचाला वडा, तल्या वडा, कोरा वडा,
कांजी वडा, घोलवडा, मगनी दालिना वडा,
उडदनी दालिना वडा, घणै तैलै सिना,
घणै घोलै भेला ।
मरिचांनी घणी चिमित्कार, अत्यंत घणुं सुकमाल
पिण केहवा ? हाथइ लीघा उछलइं, मुहडामांहि घाल्यां तुरत गलै ।
घणुं सुं वखाणीइं ? देवता पाणि खावानै टलवलै ॥
हिवइं पलेव आवै । पिण ते केहवी पलेव ?
चोखानी पलेव, ज्वारनी पलेव, बाजरीनी पलेव,
हलदिया पलेव, सबडिकीया पलेव ।
हिवै विचइं पीवाना पांणी । ते केहवा पांणी ?-
साकरना पाणी, द्राखना पाणी, गंगाना पाणी, ताढा हीम सीतल पांणी ॥
एहवा पांणी जांणवा ।
हिवे उपरि छछनालायै दही आवइं ।
ते केहवा वखाणै ?- गाइना दही, भइसना दही, सथूरा दही,
काठा जमाव्या दही,
मधुरा दही । हिवइ दहीना घोल आंणैं । ते केहवा ?
सजीराला घोल, सलूणा घोल, जाडा घोल,
तेहना भर्या कचोला,
चोखा सेती जीमतां थया रंगरोल ।
वली सखरा करबा, भरी आण्या गरबा
मांहि राई, जीमतां ढील नही काई ।
उपरि जीरा लूणरो प्रतिवास करणहारी पणि खास ।
हिवै चलु करिवाना पाणी आवै ।
पांडल पाणी, केवडाव(वा)सित पांणी, कथाना पांणी,
कपूरवासित पांणी, चंदनवासित पांणी, एलचीवासित पाणी, गंगोदक पांणी,
एहवा पांणीसुं चलू कराव्या ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिवइ मूंछण[१] आवै । ते पिण केहवा मूंछण ?-
वांकडी सोपारीनी फाल, चिवल सोपारीनी फाल,
वली तीखा लवंग, जावंत्री, जायफल, एलची,
पाका पान ।
नागरवेलना पान, घणां आदरनैं मांन,
घणां गीत नें ग्यान, घणां तान नै मांन ।
पछै भला ग्यांन, घणां तान नै मांन ।
पछै भला वस्त्र पहिराव्या । ते कुण कुण ?-
देवदूष्यवस्त्र रत्नकंबल पांभडी खीरोदक अटाणं
खासा मुलमुल भैरव सालु अधोत्तरी नरमा
थिरमा सेल्हा कपूरधूलि महाअमूल कसबी
मुखमल चीणी मसंजर बुलबुलचसमा
कथीपा पाटू टसरिया सणिया नवतारी कुंजर
प्रमुख वस्त्र पंचरंग पहिराव्या ।
वली केसरीया छाटणां कीधा । भला वीलेपण कीधा ।
बावन्ना-चंदन, अरगजा एहवा अनेक चोवा
पांचेल (?) केवडेल, मोगरेल, एहवा अनेक तेल पिण सरिरै लगाया ।
वली बत्रीस जातिना ग्रहणा ते पिण आप्या ।
पुरुष अथवा स्त्रीयांदिकना ग्रहणा आप्या ते कहे छै ॥
हवे ग्रहणा वखाणें ॥ ते कुण कुण ?-
मुगट १. कुंडल २. तिलक ३. हार ४. दोरा ५.
बीरबल ६. प्रमुख अंगद बैहरखा ७. नवग्रही ८.
मुंद्रडी ९. कणदोरा १०. हाथपगना कडला ११.
सांकली १२. पणुंचीया १३. मादलीया १४.
प्रमुख एहवा ग्रहना आप्या । एहवी
कुटंब सामीभक्तिवच्छिल कीधी ।
वली अनेक प्रकारना फूल तेहनी माला करी

---

१. 'मुखवास' इति टि. प्रतौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहीराव्या ते जांणवा । ते फूल केहवा-
मोगरो जवाद पोईसडा प्रमुख डीले लगाड्या ।
हवै फूलमाला दियें - जाई, जूई, कुंद,
मचकुंद, केवडो, चांपा, मरूवो, मोगरो,
दामणो, केतकी, मालती, प्रमुखना
फूलनी माला पैरावी,
फल हाथमां दीईधा ॥ सीख दीधी ॥ संपूर्णः ॥

C/o. प्रभागिरिदर्शन धर्मशाला
तलेटी रोड, पालीताणा

—x—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूंक नोंध :

'पुष्पमाला चिंतवणी'मां सूचित 'क्रीडा' अंगे विवरण

अनुसन्धान-अंक ४८मां 'पुष्पमालाचिंतवणी' नामनी कृति प्रगट करवामां आवी हती. जेमां प्रारम्भमां प्रतमांथी उतारेला विविध फूलोनां नामवाळा ५ कोष्टक पण मूकवामां आव्या हता. आ ५ कोष्टक वडे सरस रमत रमी शकाय छे, जे वाचकोना मनोविनोद अत्रे रजू करवामां आवे छे.

आ रमत माटे कुल छ पत्र (Cards) नी जरूर पडे छे. जेमांथी ५ पत्र पर कृतिमां देखाडेला ५ कोष्टक ज लखवाना छे, ज्यारे एक पत्र पर कृतिमां दर्शावेलां तमाम फूलोनां (३१) नाम लखवानां छे. कोष्टकपत्रोनी पाछली बाजु १,२,४,८,१६ एवा अंको लखवाना छे. कया कोष्टक पर कयो अंक ते देखाडेलुं छे. अहीं पण फरीथी देखाडाशे.

आ रमत पोतानुं कौशल देखाडवा माटेनी छे. एमां एक जाणकार व्यक्ति, अजाण माणसने, सौ प्रथम फूलोनां नामवाळुं पत्र आपी कोई पण एक नाम धारवानुं कहे छे, जे तेने गुप्त राखवानुं होय छे. पछी कोष्टकवाळां ५ पत्र तेने आपी, जे पत्रोमां पोते धारेला फूलनुं नाम होय ते पत्रो नीचे ऊंधा मूकी देवानुं कहेवामां आवे छे. ऊंधा मूकेला पत्रोमां लखवामां आवेला अंकोनो सरवाळो करवाथी धारेला फूलनुं नाम जडी जाय छे. आ जडेलुं नाम ज्यारे व्यक्तिने कहेवामां आवे त्यारे पोताना मननी वात सामा माणसे कई रीते जाणी लीधी तेनुं तेने खूब आश्चर्य थाय छे.

धारो के व्यक्तिए 'सेवंत्री' नुं फूल पसंद कर्युं होय, तो तेणे धारेला फूलना नामवाळा कोष्टक पत्रो त्रण छे, जेमनी पाछळ १,२,१६ अंको लखेला छे. पत्रो ऊंधा मूकेला होवाथी आ अंको जोईने जाणकार पुरुष सरळताथी '१९ = सेवंत्री' एम जाणी शके छे. हा, आ माटे ३१ फूलोनां नाम तेने क्रमशः याद होय अथवा तेनी पासे ए लखेलो कागळ होय ते जरूरी छे.

व्यक्तिने आपवामां आवता ३१ फूलोनां नामवाळा पत्रमां नामो आडां-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवळां लखीने, पाछळ लखवामां आवता अंकोना स्थाने '१=सूर्य, ४=दिशा' जेवा संकेतो प्रयोजीने के एवी बीजी तरकीबो वडे रमतनी रोचकता-गुप्ततामां वधारो करी शकाय छे.

पत्र नं. १

चांपो	पान	पाडल	सुरजन
गुलाब	पोईण	सदावतंस	अंवकेस
मोगरो	केसु	सेवंत्री	केवडो
चंवेली	कमल	कणियर	तडतडिया
कंदली	कमोदनी	करणी	आफु
केतकी	कुन्द	सिरखंडी	बोलसरी
धतूरो	सुदरसण	हारसिणगार	सहकार
जूई	मालती	करीर	

पत्र नं. २ अंक-१

चांप	मोगर	कंदली	धतूरो
पान	केसु	कमोदनी	सुदरसण
पाडल	सेवंत्री	करणी	हारसिणगार
अंवकेस	तडतडिया	बोलसरी	करीर

पत्र नं. ३ अंक-२

गुलाब	मोगरो	केतकी	धतूरो
पोईण	केसु	कुन्द	सुदरसण
सदावतंस	सेवंत्री	सिरखंडी	हारसिणगार
केवडो	तडतडिया	सहकार	करीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्र नं. ४ अंक-४

चंवेली	कंदली	केतकी	धतूरो
कमल	कमोदनी	कुन्द	सुदरसण
कणियर	करणी	सिरखंडी	हारसिणगार
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

पत्र नं. ५ अंक-८

जूई	पान	पोईण	केसु
कमल	कमोदनी	कुन्द	सुदरसण
सुरजन	अंवकेस	केवडो	तडतडिया
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

पत्र नं. ६ अंक-१६

मालती	पाडल	सदावतंस	सेवंत्री
कणियर	करणी	सिरखंडी	हारसिणगार
सुरजन	अंवकेस	केवडो	तडतडिया
आफु	बोलसरी	सहकार	करीर

नोंध : अनुसन्धान, अंक नं. ४८ मां आपेला कोष्टकोमां अंक-१६नो कोष्टक अहीं बताव्या मुजब बदलवानो छे.

– 'पुष्पमालाचिंतवणी'ना ३०मा श्लोकमां फूलनुं नाम 'कोडिकुमदनी' नहीं, पण 'सहकार' छे.

– मुनि त्रैलोक्यमण्डन विजय
ओसवाल जैन उपाश्रय
माणेक चोक, खम्भात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन ग्रन्थों मे प्रदर्शित संभ्रमावस्था

(वैदिक तथा वेदोत्तरकालीन परम्परा के सन्दर्भ में)

ले. शोधछात्रा : डो. कौमुदी बलदोटा

प्रस्तावना :

प्राकृत भाषाभ्यासी होने के नाते 'इसिभासियाइं' नाम के अर्धमागधी प्रकीर्णक ग्रन्थ की ओर मेरा ध्यान विशेष आकृष्ट हुआ । समझ में आया कि अपना अनेकान्तवादी उदारमतवादी स्वरूप बरकरार रखते हुए, इस ग्रन्थ में जैन विचारवंतों के साथ साथ ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्परा के विचारवन्तों का भी आदरपूर्वक जिक्र किया है । 'ऋषिभाषित' में कुल ४५ ऋषियों के विचार शब्दाङ्कित किये हैं । इस ग्रन्थ की अर्धमागधी भाषा का स्तर आचाराङ्ग जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ की भाषा से मिलताजुलता है । प्राकृतविद्या के क्षेत्र में यह तथ्य अब स्वीकृत हो चुका है ।

ऋषिभाषित में 'ऋषि' नारद :

ऋषिभाषित का पहला अध्ययन नारदविषयक है । नारद के लिए उपयुक्त 'ऋषि' शब्द ब्राह्मण परम्परा का द्योतक मान सकते हैं । नारद का गौरव 'अर्हत्, देव, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, विरत' इन विशेषणों से किया है ।[१] इस अध्ययन में 'सोयव्व' याने 'श्रोतव्य' क्या है, इससे सम्बन्धित नारद के विचार अंकित किये हैं । प्राणातिपातविरमण आदि चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन नारद के मुख से किया है । चातुर्याम धर्म की परम्परा पार्श्वनाथ के इतिहास में पायी जाती है । इससे यह तथ्य उंजागर होता है कि महावीर के पहले भी नारद के गौरवान्वित स्थान की परम्परा जैन विचारधारा में दृढमूल है । नारद का यह सम्मानित स्थान हमारे शोधनिबन्ध का प्रारम्भबिन्दु बन गया ।

यद्यपि 'श्रोतव्य' का अर्थ 'श्रवणीय' है और जैन परम्परा ने नारदद्वारा प्रतिपादित चातुर्याम धर्म को श्रवणीयता का दर्जा दिया है, तथापि श्रवणीयता का

नेशनल संस्कृत कॉन्फरन्स, नागपुर, १,२,३ मार्च २००९ में पठित शोधप्रबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध प्रमुखता से नामसंकीर्तन तथा गायन से है। ऋग्वेद के आठवें मण्डल में नारद काण्व ऋषि कहता है, 'हे इन्द्र, तुम्हारा रथ और अश्व वीर्यशाली हैं। हे अपार कर्तृत्व के धनी, तुम खुद वीर्यशाली हो तथा तुम्हारा नामसंकीर्तन भी वीर्यशाली है।'[२] रामायण के बालकाण्ड में नारद द्वारा सनत्कुमार को रामायण नामक महाकाव्य का 'गान' सुनाने का उल्लेख है।[३] पुराणकाल में प्रचलित नवविधा भक्ति का पहला प्रकार भी 'श्रवण' ही है। नारद से जुडे हुए नामसंकीर्तन अथवा श्रवण अर्थात् भक्तिसम्प्रदाय से निगडित सन्दर्भ हमें ऋग्वेद से ही आंशिक रूप से प्राप्त होते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से जैन परम्परा में 'नामसंकीर्तन' तथा 'श्रवण' का स्थान प्राथमिक स्तर पर अधोरेखित नहीं किया गया है। इसी कारण से 'श्रोतव्य' का अर्थ श्रवणीय महाव्रतों के रूप में प्रस्तुत किया है।

ऋषिभाषित की अन्तिम गाथा में नारद ने सत्य, दत्त (भिक्षाचर्य) और ब्रह्मचर्य को उपधान याने 'आश्रयणीय तप' कहा है। यही सूत्र पकडकर आवश्यनिर्युक्ति आदि ग्रन्थों में 'सोय' शब्द का अर्थ 'शौच' और 'शौच' शब्द का अर्थ 'सत्य' बताया है।[४] कोई भी साधु दूसरे को उपदेशश्रवण कराये बिना भिक्षा का स्वीकार नहीं करता, इस तथ्य का सूचन भी इसीसे होता है। जैन परम्परा ने नारद के ब्रह्मचारी होने की मान्यता आखिरतक कायम रखी है। हिन्दु पुराणों की तरह उसे विवाहित और पुत्रपौत्रसहित नहीं माना है।

सर्वदा, सर्वत्र और सर्वकाल विचरण करनेवाला होकर भी निर्ममत्व अर्थात् अनासक्ति के कारण सदैव उपलिप्तता से रहित होने का जो जिक्र ऋषिभाषित में किया है इससे भी नारद के सर्वसंचारित्व तथा अनासक्ति का द्योतन होता है। इसी सूत्र को आगे जाकर दोनों परम्परा ने बरकरार रखा है।

ऋषिभाषित में नारद का जो गौरवान्वित स्थान अंकित किया है और उनके मुख से जिन-जिन शब्दों का प्रयोग करवाया है, इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि हिन्दु पुराणों के परिवर्तनों के साथ साथ नारद के व्यक्तिमत्व में अनेक प्रकार के परिवर्तन आये तथापि आचाराङ्ग के समकालीन ग्रन्थ में अंकित उनके आदरणीय स्थान की छाया जैन ग्रन्थकारों में मन पर तथा साहित्य पर सर्वदा छायी रही। अनेक परस्परविरोधी मतों का तथा विशेषणों का मिलन करते हुए उन्हें जो कठिनाई महसूस हुई इसीके कारण जैन आचार्यों की संभ्रमावस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाई देती है ।

यद्यपि ऋषिभाषित भाषिक दृष्टि से आचाराङ्ग से निकटता रखता है तथापि अर्धमागधी आगमग्रन्थों के विभाजन में ऋषिभाषित का स्थान अङ्ग, उपाङ्ग आदि ग्रन्थों के बाद प्रकीर्णकों में निश्चित किया है । इस शोधलेख में आधुनिक मान्यताप्राप्त क्रम स्वीकार करके स्थानाङ्ग आदि क्रम से विवेचन किया है ।

स्थानाङ्ग में 'देव' नारद :

ऋषिभाषित में जिस नारद को सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बताया है, उसे स्थानाङ्ग ने देवलोक में स्थान दिया है । क्योंकि ऋषिभाषित में ही 'देवनारदेण अरहता इसिणा बुइयं' ऐसा उल्लेख पाया जाता है ।[५] नारद का देवत्व स्थानाङ्ग में निश्चित ही गौणत्वसूचक है । नारद का त्रैलोक्यसंचारित्व ध्यान में रखकर उन्हें 'व्यन्तरदेव' कहा है । गायनप्रवीणतानुसार उन्हें व्यन्तरदेवों के चौथे 'गान्धर्व' उपविभाग में स्थान दिया है ।[६] इसके समर्थन में स्थानाङ्ग में कहा है कि गान्धार स्वरवाले व्यक्ति गाने में कुशल, श्रेष्ठ जीविकावाले, कला में कुशल, कवि, प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते हैं ।[७]

ऋषिभाषित के 'श्रोतव्य' का अन्वयार्थ 'श्रवणीय गान' इस प्रकार यहाँ किया गया होगा । भागवतपुराण के अनुसार नारद ने कृष्ण, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी से गानविद्या सीखी थी ।[८] भागवतपुराण में उनके वीणावादन के भी उल्लेख पाये जाते हैं ।[९] नारद के देवत्व की यही सूचना तत्त्वार्थसूत्र ने आगे बढायी है ।

समवायाङ्ग में 'भावी तीर्थंकर' नारद :

समवायाङ्ग के अनुसार जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में नारद 'इक्कीसवें तीर्थंकर' होनेवाले हैं ।[१०] समवायाङ्ग के इस उल्लेख से सूचित होता है कि उन्हें भावी तीर्थंकर बताकर उनके प्रति आदरणीयता तो सूचित की है लेकिन ऋषिभाषित में जिस प्रकार उन्हें उसी जन्म में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त कहा है उस प्रकार का सम्मानित स्थान समवायाङ्ग में नहीं है । इसका कारण यह हो सकता है कि वासुदेव कृष्ण भावी तीर्थंकर होनेवाले हैं । नारद और कृष्ण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकदूसरे के सम्पर्क में रहना, दोनों परम्पराओं ने समान रूप से चित्रित किया है । वासुदेव कृष्ण का प्रथमतः नरकगामी होना और नारद का न होना एक अजीब सी बात है । इसका कारण यह होगा कि जैन परम्परा के अनुसार भी नारद ऋषि है, परिव्राजक है, अनगार है तथा यज्ञीय पशुहिंसा के विरोधक भी है ।

भागवतपुराण के अनुसार विष्णु का तीसरा अवतार नारद है ।[११] हालाँकि परवर्ती दस अवतारों में इनकी गिनती नहीं की है ।

नारद के भावी तीर्थंकरत्व के उल्लेख उत्तरपुराण[१२] तथा प्रवचनसारोद्धार[१३] में भी पाये जाते हैं । लेकिन नारद के पूर्वजन्म या भावी जन्म की कथाएँ यहाँ अंकित नहीं की गयी है ।

भगवतीसूत्र में 'नारदपुत्त अनगार' :

भगवतीसूत्र का नारदपुत्त औपपातिकसूत्र में प्रतिपादित नारदीय परिव्राजकों की परम्परा का मालूम पडता है । वहाँ उसको साक्षात् नारद न कहके 'नारदपुत्त' शब्द से अंकित किया है । जैन परम्परा में देवर्षि नारद को कृष्ण और अरिष्टनेमि के समकालीन माना है । इसलिए उसी नारद का महावीर के साथ बातचीत करना, उन्हें कालविपर्यासात्मक लगा होगा ।

भगवतीसूत्र में परमाणुपुद्गलविषयक चर्चा नारदपुत्त अनगार और निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार दोनों में चल रही है । निर्ग्रन्थीपुत्र परमाणुपुद्गल के सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व तथा परमाणुओं के स्कन्धों के बारे में नारदपुत्त को प्रश्न पूछता है । नारदपुत्त के एकान्तवादी मत पर निर्ग्रन्थीपुत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से मत प्रदर्शित करता है ।[१४] चतुर्विध निक्षेप अथवा न्यासों पर आधारित खास जैन दृष्टिकोण, परिव्राजक नारदपुत्त को समझाने की यह कोशिश, दोनों परम्पराओं के आदानप्रदान प्रक्रिया की प्रतिनिधिस्वरूप मानी जा सकती है ।

वेदोत्तरकालीन तथा पौराणिक परम्परा में नारद की जिज्ञासा तथा ज्ञानलालसा बारबार दृग्गोचर होती है । जैसे कि छान्दोग्य-उपनिषद् में नारद-सनत्कुमार संवाद प्रस्तुत किया है । सर्व विद्याओं का ज्ञाता होकर भी नारद आत्मविद्याविषयक तथ्य सनत्कुमार से जानना चाहता है ।[१५] महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत नारायणीय उपाख्यान में प्रकृति का विशेष स्वरूप जानने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारद के श्वेतद्वीपगमन का उल्लेख है ।[१६] भागवतपुराण में नारद ब्रह्मदेव को सृष्ट्युत्पत्तिसम्बन्धी प्रश्न पूछता है और ब्रह्मदेव विस्तार से उसकी जिज्ञासापूर्ति करता है ।[१७]

इससे यह स्पष्ट होता है कि नारद, चेतनतत्त्व के बारे में जानने के लिए जितना उत्सुक है इतना ही वह जड प्रकृति का स्वरूप जानने के लिए भी तत्पर है । जिज्ञासा, ज्ञानलालसा, प्रश्नोत्तररूप संवाद आदि के जो अंश नारद के स्वभाव में हिन्दु परम्परा में प्राप्त है, वही अंश हमें भगवतीसूत्र में भी मिलते हैं । नारद का श्रमण परम्परा के साथ वैचारिक आदानप्रदान होते रहने का यह तथ्य अन्य जैन साहित्य से भी उजागर होता है ।

दोनों परम्पराओं ने नारद के 'सर्वसंचारित्व' का उपयोग ज्ञानलालसा की पूर्ति के लिए अच्छी तरह से करवाया है ।

तत्त्वार्थसूत्र के 'दैवतशास्त्र' में नारद :

चौथी शताब्दी के संस्कृत सूत्रबद्ध तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में शब्दबद्ध दैवतविषयक विवेचन में नारद का स्थान विशेष ही दृढमूल हुआ । देवों के चार निकायों में दूसरे क्रमांक पर व्यन्तरदेव हैं । व्यन्तरदेव तीनों लोकों में भवनों तथा आवासों में बसते हैं । वे स्वेच्छा से या दूसरों की प्रेरणा से भिन्न भिन्न स्थानों पर जाते रहते हैं । उनमें से कुछ मनुष्यों के सम्पर्क में भी रहते हैं । व्यन्तरों के आठ प्रकार है । उसमें चौथे स्थान पर 'गान्धर्व' है । गान्धर्वों के बारह प्रकारों में तुम्बुरव और नारद की गणना की है ।[१८] इसका मूलाधार हमें 'पन्नवणा' नाम के अर्धमागधी उपाङ्ग से भी प्राप्त होते हैं ।[१९] व्यन्तरदेवों के अवधिज्ञान होने का जिक्र भी तत्त्वार्थसूत्र ने किया है ।[२०]

रामायण, भागवतपुराण तथा अन्य ग्रन्थों में भी नारद का त्रैलोक्यज्ञातृत्व स्पष्ट किया है । रामायण के बालकाण्ड में उल्लेख है कि नारद ब्रह्मदेव की सभा देखने मेरुपर्वत के शिखरपर गये थे ।[२१] भागवतपुराण के प्रथम स्कन्ध में नारद कहते हैं, 'मैं भगवान् की कृपा से वैकुण्ठ तथा तीनों लोकों में बाहर और भीतर बिना रोकटोक विचरण किया करता हूँ ।'[२२]

तत्त्वार्थसूत्र के चौथे अध्याय में लोकान्तिक देवों को 'देवर्षि' कहा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवर्षि 'नौ' हैं । यद्यपि इनमें 'देवर्षि नारद' स्पष्टतः से नहीं कहा है तथापि देवर्षियों के गुणविशेष देखकर यह मालूम होता है कि यह देवर्षि नारद के व्यक्तित्व से बहुत ही निकटता दिखायी देती है । उनका परित्तसंसारी होना, विषयरति से परे होना, देवों द्वारा पूजित होना तथा चौदह पूर्वों के ज्ञाता और तीर्थंकर होना ये सब विशेष देवर्षि नारद के व्यक्तित्व से मेल खाते हैं । लोकान्तिक देवों का निवासस्थान 'ब्रह्मलोक' नामक पाँचवा स्वर्ग है । उनके इन्द्र को 'ब्रह्मा' कहते हैं ।[२३]

वैदिक मान्यता के अनुसार भी देवलोक में अर्थात् स्वर्गलोक में वास्तव्य करनेवाले ऋषियों को 'देवर्षि' कहते हैं । देवर्षि 'दस' हैं । और उनमें से पहली गिनती नारद की है ।[२४] रामायण, भगवद्गीता और भागवतपुराण में नारद को 'देवर्षि' कहा है । इस परम्परा के अनुसार वे देव द्वारा पूजित है तथा त्रैलोक्यज्ञाता तथा विषयरति से परे हैं । भागवतपुराण में नारद को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा है[२५], यह बात भी विशेष लक्षणीय है ।

तत्त्वार्थसूत्र में लोकान्तिक देवों की गिनती करते समय 'नारद' नामक व्यक्तिगत उल्लेख नहीं किया है । तथापि 'देवर्षि' नामक उपर्युक्त विशेषताओं से सम्पन्न 'पद' की निर्मिती करके उसे 'देवर्षि' नामाभिधान दिया होगा । देवर्षि नाम का उपयोग करते हुए उनके मन में कहींना कहीं नारद के व्यक्तिमत्व की छाया जरूर छायी होगी ।

तत्त्वार्थसूत्र के दैवतशास्त्र में दो बार देवर्षि नारद का जिक्र क्यों किया ? इस प्रश्न का समाधान हम ढूँढ सकते हैं । औपपातिक उपाङ्गसूत्र में नारदीय परिव्राजकों को व्यन्तरगति प्राप्त होने का उल्लेख है ।[२६] इसी वजह से तत्त्वार्थ में व्यन्तरदेवों में उनकी गणना की होगी । तथापि 'देवनारदेण अरहता इसिणा बुइयं' इस ऋषिभाषितगत वाक्य से सूचित उसका देवर्षिरूप आदरणीय स्थान उन्होंने लोकान्तिक देवों के 'देवर्षि' नाम से सूचित किया है । साक्षात् 'नारद' नाम का उल्लेख नहीं है ।

तत्त्वार्थसूत्रकार के सामने हिन्दु और जैन परम्परा के जितने भी नारदविषयक सन्दर्भ थे, उनपर सोचविचारकर उन्होंने आदरणीय व्यक्तित्व के रूप में 'देवर्षि' नामक लोकान्तिक देवों को स्थान दिया होगा । तथा विचरणशील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारद को व्यन्तरदेवों में रखा होगा। नारद के प्रति संभ्रमावस्था का हल तत्त्वार्थने इस प्रकार निकाला।

ज्ञाताधर्मकथा में 'कच्छुल्लनारद' :

अर्धमागधी का छठा अङ्गग्रन्थ ज्ञाताधर्मकथा का काल प्रायः इसवी की पाँचवी शताब्दी का मान्य हो चुका है। इसके सोलहवें द्रौपदी-अध्ययन में नारद का विस्तृत चित्रण पाया जाता है। इसमें नारद का चित्रण बिलकुल अलग तरह से किया है। पूरे अध्ययन में इसे 'कच्छुल्लनारद' संज्ञा से ही निर्देशित किया है।[२७] उसे 'ऋषि', 'देवर्षि', 'अनगार', 'परिव्राजक' आदि विशेषणों से सम्बोधित नहीं किया है।

जैन परम्परा में अन्यत्र इतनी बडी मात्रा में नारद का व्यक्तिगत शारीरिक वर्णन नहीं पाया जाता जितना कि ज्ञाताधर्मकथा में शब्दाङ्कित है। ये 'कच्छुल्लनारद' याने कलहप्रिय अथवा अकच्छपरिधानवाले नारद, दर्शन में अतिभद्र, बाहर से विनम्र अन्तरङ्ग में कलुषित, मध्यस्थ, सौम्य, प्रियदर्शन, सुरूप, निर्मल वस्त्र परिधान करनेवाले, मृगचर्म का उत्तरीय पहननेवाले, दण्ड-कमण्डलुसहित, जटारूपी मुगुट पहननेवाले, यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्षमाला धारण करनेवाले, मुंज की मेखला धारण करनेवाले, गीतप्रिय, आकाशगमन करनेवाले तथा पृथ्वीपर भी उतरनेवाले, संक्रामणिस्तम्भिनी आदि विद्याधरों की विद्याओं से सम्पन्न, बलराम-कृष्णसहित सभी यादवों के वल्लभ, वाग्युद्ध में पटु, कलह के अभिलाषी इस प्रकार के थे।[२८]

उक्त विशेषोंसहित नारद पण्डुराजा के भवन में पधारते हैं। एक द्रौपदी छोडकर सभी नारद का आदर-वन्दन आदि करते हैं। द्रौपदी उन्हें 'असंयत' मानकर सम्मान नहीं देती। नारद मन ही मन द्रौपदी के पाँच पति होने का गर्व हरण करने की बात सोचते हैं। धातकीखण्ड में स्थित अवरकंका नगरी के पद्मनाभ राजा को द्रौपदी का सौन्दर्यवर्णन करके उकसाते हैं। परिणामवश पद्मनाभ राजा देवताद्वारा द्रौपदी का अपहरण करता है। बाद में कृष्ण वासुदेव को इसकी खबर भी देता है। कथा में अकस्मात् अवतीर्ण होकर नारद, उसी तरह से कथानक से निवृत्त होते हैं।

- नारद के प्रति 'कच्छुल्ल' शब्द का उपयोग भी सिर्फ ज्ञाता में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाया जाता है ।

- ज्ञाताधर्मकथा में 'कच्छुल्लनारद' शब्द का प्रयोग करके कथाकार ने उसके कलहशील तथा अनादरणीय अंशों का पकडकर प्रश्तुत करना तय किया है । उपर्युक्त अन्य विशेषणों में भी उनके प्रति अनादरणीयता ही ज्यादा झलकती हैं ।
- ज्ञाताकार की दृष्टि से नारद 'कृष्णचरित्र' से जुड़े हुए हैं ।
- 'द्रौपदी अपहरण की घटना तथा नारद से इसका सम्बन्ध' यह बात ज्ञाताकार की अपनी खुद की प्रतिभानिर्मिती है । ज्ञाता के पूर्व के दोनों परम्पराओं के किसी भी ग्रन्थ से द्रौपदी-अपहरण का उल्लेख नहीं पाया जाता ।
- द्रौपदी द्वारा अनादर तथा अन्यद्वारा आदरभाव दिखाने में ज्ञाताकार की संभ्रमित अवस्था दिखाई देती है ।
- नारद के व्यक्तित्व के ब्राह्मणत्वसूचक विशेषण खास तरीके से पल्लवित करना तथा द्रौपदी से उसे 'असंयत' कहलवाना आदि बातों से सूचित होता है कि जैन परम्परा में अब साम्प्रदायिक अभिनिवेश ने प्रवेश किया है ।
- यह कथा आगमप्रविष्ट होने के कारण, बाद के अनेक ग्रन्थकारों ने स्त्रियों द्वारा अनादर, द्रौपदी का अपहरण आदि विविध घटनाओं से नारद को 'मिथक' के स्वरूप में स्वीकारकर विविध प्रकार से कथाएँ प्रस्तुत की । क्योंकि यही कथा अल्पस्वल्प परिवर्तनों के साथ हमें दशवैकालिकटीका[२९], कल्पसूत्रटीका[३०], आख्यानकमणिकोश[३१], प्रवचनसारोद्धार[३२], शीलोपदेशमाला-बालावबोध[३३], उपदेशपदटीका[३४] आदि ग्रन्थों में मिलती है । मतलब जैन माहौल में नारद के इस प्रकार के चित्रण की परम्परा नायाधम्मकहा से शुरू हुई ।

नारद के व्यक्तित्व के कलहप्रियता का यह अंश हम ब्राह्मण परम्परा से भी ढूंढ सकते हैं लेकिन इस अंश का इतनी तीव्रता से तथा स्पष्टता से चित्रण ब्राह्मण परम्परा में नहीं पाया जाता । ब्राह्मण परम्परा में यह भी दिखाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है कि नारदद्वारा उपस्थित कलहों का परिणाम अन्तिमतः अच्छा और कल्याणकर होता है ।

हरिश्चन्द्र से वरुणदेवता के प्रीत्यर्थ यज्ञ करने की सलाह देकर पुत्रप्राप्ति करवाना तथा बाद में इन्द्र और वरुण के आपसी कलह का फायदा उठवाकर 'नरमेध' टालकर उस पुत्र को इन्द्र के द्वारा बचाना यह सब कार्य 'नारद' बहुत ही कुशलता से करते हैं । यह सब वृत्तान्त ऐतरेय ब्राह्मण से प्राप्त होता है ।[३५] यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मणने नारद की कलहप्रियता सूचित की है तथापि उसके परिणाम अन्तिमतः भले ही होते हैं । इस कथा में ऐतरेय ब्राह्मण ने नारद की नरमेधविरोधिता तथा उनकी राजनीतिपटुता पर प्रकाश डाला है । ऋग्वेद में चित्रित काण्व नारद की व्यक्तिरेखा से ये दो अंश अच्छी तरह मिलतेजुलते हैं ।

रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण नारद से कहता है कि युद्ध के दृश्य देखना आपको बहुत ही प्रिय है ।[३६] रामायण के इस कथाभाग में यह सूचित नहीं किया है कि नारद युद्ध करवाते हैं लेकिन यही युद्धप्रियता का अंश ज्ञाताधर्मकथा ने उठाकर स्पष्ट शब्द में कहा है कि यह नारद 'कलहजुद्धकोलाहलप्पिय' तथा 'भंडणाभिलासी' है ।

स्वर्ग से पारिजातक का फूल लाकर नारद, सत्यभामा और रुक्मिणी में कलह करवाते हैं तथा सत्यभामा से कृष्ण का दान देकर उसे प्रतिबोधित करके कृष्ण को फिर वापस देते हैं ।[३७] विष्णुपुराण के इन कथाओं में नारद की कलहप्रियता दृग्गोचर होती है । कथा की रचना तथा शब्दयोजना इस कुशलता से ही है कि उससे नारद के मन की दूषितता नहीं दिखायी देती लेकिन उसका हँसीमजाकवाला स्वभाव प्रगट होता है ।

मार्कण्डेयपुराण के एक प्रसंग के अनुसार नारद, इन्द्रसभा में जाकर अप्सराओं का आपस में कलह करवाता है ।[३८] इस कलह के पीछे दुर्वासऋषि को अन्तर्मुख करवाने का उद्देश्य स्पष्टतः दिखायी देता है ।

भागवतपुराण, विष्णुपुराण, मार्कण्डेयपुराण में नारद के स्त्रियों के सम्पर्क में आने की तथा निरासक्त ब्रह्मचर्यपालन की जो बात उठायी है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका मूल हमें महाभारत में मिलता है । महाभारत में कहा है कि विविध विषयों में सतत जिज्ञासा रखनेवाले नारद ने पंचचूडा से स्त्रीस्वभाव समझ लिया था ।[३९] सामान्यतः स्त्रियों में उपस्थित मत्सर और कलहप्रियता के अंश नारद ने उनके सम्पर्क में आकर अधिक परिष्कृत किये हुए दिखायी देते हैं ।

भागवतपुराण, विष्णुपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण आदि पुराणों से नारद की कलहप्रियता तथा स्त्रीसम्पर्क ये दोनों मुद्दे उठाकर जैन ग्रन्थकारों ने विविध ग्रन्थों में प्रस्तुत किये हुए दिखायी देते हैं । पुराणों की तुलना में जैन ग्रन्थों में आदरणीयता तो कम दिखायी देती है ।

उपरिलिखित सब चर्चा का फलित यह है कि यद्यपि ज्ञाताकार ने 'कच्छुल्लनारद' कहकर नारद के प्रति अनादरणीयता प्रगट की है तथापि ऋषिभाषित में अंकित नारद के प्रति आदरणीयता का भाव उसके मन से पूरी तरह ओझल नहीं हुआ है । इसी वजह से उसने पण्डु, कृष्ण, कुन्ती आदिद्वारा नारद का सम्मानित भाव भी दिखाया है और उसके नीच गतिगामी होने का कोई संकेत नहीं दिया है ।

औपपातिक में 'नारदीय-परिव्राजक' :

औपपातिकसूत्र में विविध प्रकार के समकालीन तापसों के आचार का संक्षिप्त विवेचन किया है । उसमें आठ ब्राह्मण जाति के परिव्राजकों में नारद की गणना की है ।[४०] आश्चर्य की बात यह है कि नारद को एक व्यक्ति मानकर उसके विशेषण, उसकी कथाएँ यहाँ बिलकुल नहीं दी है । औपपातिक में ही आगे जाकर नारदीय परिव्राजकों के आचार का वर्णन टीकाकार ने दिया है । कहा है कि, "ये नारदीय परिव्राजक दानधर्म की, शौचधर्म की, तीर्थाभिषेक आदि की सब बातें जनता को अच्छी तरह समझाते हुए जनता में विचरते रहते हैं ।'[४१]

औपपातिक के टीकाकार के काल तक (बारहवी शताब्दी) देवर्षि नारद से शुरू हुई परम्परा का एक संकीर्तनात्मक भक्तिसम्प्रदाय जरूर बना होगा । क्योंकि टीकाकार कहते हैं कि, 'ये सब कृष्ण की भक्ति करनेवाले हैं ।' लगता है कि उपदेश और गुणसंकीर्तन उनकी विशेषताएँ होंगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औपपातिक में उनके आगामी गति का वर्णन है । कहा है कि, ''ये नारदीय परिव्राजक व्यन्तरदेव होंगे अथवा ज्यादा से ज्यादा ब्रह्मलोक नामक पाँचवें स्वर्ग में जायेंगे ।''

वेदोत्तरकालीन पौराणिक परम्परा में ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी से विविध भक्तिसम्प्रदायों का जो उद्‌गम माना जाता है, उसके सूचक सन्दर्भ हमें औपपातिक (पाँचवी-छठ्ठी शती) तथा औपपातिक टीका से प्राप्त होते हैं ।

आवश्यकनिर्युक्ति तथा आवश्यकटीका में 'नारदोत्पत्ति' :

नारद के मातापिता तथा अध्ययन आदि का वर्णन जैन परम्परा में प्रथमतः आवश्यकनिर्युक्ति[४२] तथा आवश्यकटीका[४३] में दिखाई देता है । नारद के मातापिता तथा दादादादी के 'यज्ञयश' आदि नाम ब्राह्मण परम्परा के सूचक हैं । उनके तापस होने का भी कथन है । जिस उञ्छवृत्ति का यहाँ निर्देश है, उसका विशेष वर्णन हमें महाभारत[४४] में मिलता है । बालक नारद के ऊपर जृम्भक देवों ने कृपा करना तथा प्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों का पठन करवाना ये घटनाएँ उनके श्रमण परम्परा के नजदीक होने की सूचना देती हैं । मणिपादुका तथा कांचनकुण्डिका के उल्लेख पुनः उनके ब्राह्मणत्व के ही द्योतक हैं ।

आवश्यकटीकान्तर्गत कथा का उत्तरार्ध ऋषिभाषित के प्रथम अध्ययन का कथन करनेवाले नारद की पूर्वपीठिका स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है । वासुदेव कृष्ण नारद को 'शौच' शब्द का अर्थ पूछते हैं । नारद सीमन्धरस्वामी को पूछकर उसका अर्थ जान लेते हैं कि 'शौच 'सत्य' है ।' वासुदेव कृष्ण नारद को 'सत्य' के अर्थ पर विचारणा करने को बाध्य करते हैं । सत्य का विशेष अर्थ खोजते खोजते नारद को 'जातिस्मरण' प्राप्त होता है और वे 'प्रत्येकबुद्ध' हो जाते हैं । टीकाकार हरीभद्र के अनुसार यही 'प्रत्येकबुद्ध नारद' ऋषिभाषित के प्रथम अध्ययन का कथन करते हैं ।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ऋषिभाषित के 'सोयव्व' शब्द का अर्थ हरिभद्र ने 'श्रोतव्य' न करके 'शौच' किया है । प्रत्येकबुद्धत्व की प्राप्ति के बाद उनके ही मुख से चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करवाया है । आठवीं शती में विद्यमान हरिभद्रसूरि दीक्षापूर्वकाल में ब्राह्मण परम्परा के होने से उनके सामने मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ मौजूद होंगी । मनुस्मृति में मिट्टी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पानी से होनेवाली शुद्धता के बजाय मनःशौच तथा सत्याचरण की शुद्धता का महत्त्व बताया है ।[४५] जैन आचारशास्त्र में भावशुद्धि को अग्रिम महत्त्व दिया गया है, यह बात तो सुपरिचित ही है ।

ऋषिभाषित के 'नारद' को आदरणीय रूप से प्रस्तुत करनेवाला हरिभद्र भी नारद के बारे में दिखायी देनेवाली संभ्रमावस्था से नहीं छूटे, क्योंकि दशवैकालिकटीका में वे कहते हैं कि, 'कामकथा यथा नारदेन रुक्मिणीरूपं दृष्ट्वा वासुदेवेन कृता ।'[४६] इसी टीका में द्रौपदी के अपहरण के प्रसंग में भी नारद की भूमिका का उल्लेख है ।

यद्यपि जैन परम्परा में दोनों प्रकार के नारद चित्रित हैं तथापि ऋषिभाषित में शब्दाङ्कित नारद की पूरी कथा देकर, हरिभद्रने आदरणीय नारद के प्रति अपना झुकाव स्पष्ट किया है ।

हिन्दु पौराणिक परम्परा में भागवतपुराण[४७], वायुपुराण[४८], ब्रह्माण्डपुराण[४९] और ब्रह्मवैवर्तपुराण[५०] में नारदोत्पत्तिविषयक विविध कथाएँ दी गयी हैं । भागवतपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में नारद को दासीपुत्र भी कहा है । जैन साहित्य के किसी भी ग्रन्थ में नारद के दासीपुत्र होने का जिक्र कहीं भी नहीं किया है । नारद की उत्पत्तिविषयक कथा सिर्फ हरिभद्र ने ही दी है और उसको यज्ञदत्त और सोमयशा का पुत्र बताकर उनका ब्राह्मणत्व ही स्पष्ट किया है । हिन्दु पुराणों में अंकित नारद के निम्नजातीय होने की बात उत्तरवर्ती जैन ग्रन्थकारों ने क्यों नहीं उठायी होगी ? इसका समाधान यह है कि जैन शास्त्र में जन्माधार जाति को कभी भी महत्त्व नहीं दिया जाता, 'आध्यात्मिक योग्यता' ही पूज्यताका आधार मानी गयी है ।

त्रिलोकप्रज्ञप्ति में 'अतिरुद्र' नारद :

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में विशेष लक्षणीय पुरुषों की प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में पुनरावृत्त होनेवाली एक परम्परा उद्धृत की गयी है। यौवन्न महापुरुष अथवा तिरसठ शलाकापुरुषों की परम्परा तो सुपरिचित है लेकिन सातवीं शताब्दी के शौरसेनी भाषारचित त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ में रुद्र, नारद और कामदेवों की भी हर युग में नौ नौ संख्या बतायी हैं । त्रिलोप्रज्ञप्ति के सिवा अन्य कोई ग्रन्थ में इसका निर्देश नहीं है । त्रिलोकप्रज्ञप्ति के चतुर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाधिकार में लिखा है कि,

"भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरकमुख और अधोमुख ये नौ नारद हुएं । ये सब नारद अतिरुद्र होते हुए दूसरों को रुलाया करते हैं और पाप के निधान होते हैं । सब ही नारद कलह एवं महायुद्धप्रिय होने से वासुदेवों के समान अधोगामी अर्थात् नरक को प्राप्त हुए। इन नारदों की ऊंचाई, आयु और तीर्थंकरदेवों के प्रत्यक्षभावादिक के विषय में हमारे लिए उपदेश नष्ट हो चुका है । तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव ये सब भव्य होते हुए नियम से सिद्ध होते हैं ।"[५१]

- शोधनिबन्ध में अब तक उल्लिखित ग्रन्थ में नारद के बारे में जितनी जानकारी मिलती है उससे सर्वथा अलग और चौंका देनेवाली यह जानकारी है ।
- नारद के व्यक्तिमत्त्व के सब निन्दनीय अंश इकट्ठा करके, वासुदेव आदि की तरह एक पदविशेष की निर्मिति करते हुए, वासुदेव के सम्पर्क में हमेशा रहने के कारण, उनको भी प्रथमतः नरकगामी बनाया है । नारद के नरकगामी होने का उल्लेख भी सिर्फ त्रिलोकप्रज्ञप्ति की विशेषता है ।
- कलहप्रिय एवं निन्दनीय नारद को 'काव्यगत न्याय' (Poetic Justice) के अनुसार लेखक ने नरकगामी बनाया होगा । तथापि ऋषिभाषित का आदरणीय स्थान ध्यान में रखते हुए, आगामी जन्म में नारद की सिद्धगति बताकर, लेखक ने अपनी दृष्टि से यह गुत्थी सुलझाने का प्रयास किया है।

विमलसूरिकृत पउमचरियं में नारद 'एक मिथक' :

उपलब्ध रामायण में बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में नारद की व्यक्तिरेखा अंकित की है । बीच में कहीं भी नारद का वृत्तान्त नहीं है । रामायण के चिकित्सक अभ्यासक बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं । अगर विमलसूरि के सामने दोनों काण्ड होंगे तो उन्होंने अपनी प्रतिभा और सर्जनशीलता के अनुरूप नारद को रामकथा के बीच गूँथा होगा। अगर विमलसूरि के सामने (इसवी की चौथी शती) दोनों काण्ड नहीं होंगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो सम्भावना यह भी है कि इतने सारे नारदविषयक उल्लेख जैन रामायण में पाने पर वाल्मीकि-रामायण में प्रक्षेपस्वरूप नारद की व्यक्तिरेखा जोडी गयी होगी ।

विमलसूरि के सामने नारदसम्बन्धी पूर्ववर्ती जैन धारणायें जरूर रही होंगी । तथापि पारम्परिक रूप से किसी भी तरह नारद का अंतर्भाव न करके, पहली बार नारद का सम्बन्ध विमलसूरि ने रामकथा से जोडा । कृष्णकथा से जुडा हुआ राम, इतनी बार और इतने प्रसङ्गों में और इतने अलगअलग तरीके से 'पउमचरियं' में आया है कि, हम कह सकते हैं कि विमलसूरि ने हिन्दु और जैन दोनों परम्पराओं से जुडे हुए नारद की व्यक्तिरेखा का, रामकथा में एक 'मिथक' की तरह उपयोग किया है ।

नारद के मुख से यज्ञहिंसा का विरोध[५२], नारद का जटाधारी ब्राह्मण होना[५३], यज्ञविरोध के लिए दूसरे ब्राह्मण द्वारा पीटे जाना[५४], 'अज' शब्द का सही अर्थ बताना[५५], नारद का प्रसङ्गोपात्त भयभीत होना और दूसरों द्वारा पकडे जाना, भामण्डल के मन में सीता के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना[५६], रामरावण युद्ध की खबर कौशल्या को देना[५७], निर्दोष सीता के त्याग के लिए राम को दोषी मानना, सीता के दुःख से भावविभोर होना[५८], 'लव' और 'कुश' को पत्नीपर अन्याय करनेवाले राम की कथा सुनाना, दोनों को राम को पराजित कर राज्य लेने की सलाह देना[५९], लव और कुश के जन्म की खबर लक्ष्मण को देना[६०] इ. अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य विमलसूरि ने नारद के द्वारा करवाये हैं ।

रामकथा में नारद को लाने के कई कारण विमलसूरि के मन में हो सकते हैं । उन्हें वाल्मीकि-रामायण की असम्भवनीय और अतार्किक बातें सम्भावना की कोटि में लानी है । कथा के त्रुटित धागे जोड़कर कथा का धाराप्रवाह बनाये रखना है । आदर्शवत् राम ने चारित्र्यसम्पन्न सीता पर उठाये गए कलङ्क को स्पष्ट शब्दों में अंकित करने का उनका इरादा है । रामरावण युद्ध की अयोध्यावासियों को खबर न होना उन्हें ठीक नहीं लगा होगा । ये सब काम करवाने के लिए उन्हें नारद के व्यक्तित्व के अनेक चित्ताकर्षक अंश उपयुक्त लगे और उन्होंने उनका मनःपूत प्रयोग किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन परम्परा में नारद का व्यक्तित्व प्रमुखता से कृष्णकथासम्बन्धित ही है । यद्यपि अपने महाकाव्य में विमलसूरि ने नारद का यथासम्भव उपयोजन किया तथापि एक दो अपवाद छोडकर परवर्ती जैन रामकथा में नारद की व्यक्तिरेखा का इस प्रकार प्रचलन नहीं हुआ । इस बात से भी यह सिद्ध होता है कि रामायण के प्रति विमलसूरि 'काव्यदृष्टि' से देखते थे, 'इतिहासदृष्टि' से नहीं । कथा को आगे बढ़ाने के लिए जिस प्रकार विमलसूरि ने नारद के मिथक का उपयोग कर लिया है, वह वाङ्मयीन दृष्टि से काफी सराहनीय है ।

वसुदेवहिण्डी में नारद के 'विविद रूप' :

(१) देवनारद :

लगभग छठ्ठी शताब्दी के वसुदेवहिण्डी ग्रन्थ में प्रथमतः 'नारद' का उल्लेख व्यन्तरदेवों के उपप्रकार गन्धर्वदेवों में पाया जाता है । वे गायन से सम्बन्धित हैं तथा देवयोनि के अनुसार 'विकुवर्णा' भी करते हैं । इस देवस्वरूप नारद का जैनीकरण करके, उन्हें आगमानुरूप सुमधुर गीतगायन करनेवाले तथा जिनों के गुणवर्णन करनेवाले बताये हैं । ये नारद 'तुम्बरु' से सम्बन्धित है ।[६१]

(२) अहिंसावादी ब्राह्मण नारद :

वसुदेवहिण्डी में ही अहिंसावादी ब्राह्मण नारद के सम्बन्ध में कुछ वृत्तान्त कहे गये हैं । क्षीरकदम्ब गुरु का यह शिष्य नारद, गुरु की हिंसाप्रधान आज्ञा का, अहिंसक पद्धति से अन्वयार्थ देने की कोशिश करता है । "जहाँ कोई देखें नहीं, वहाँ 'छगल' याने अज मारो" इस वाक्य का अर्थ नारद लगाते हैं कि इस पृथ्वीतल पर एक भी जगह ऐसी नहीं है, जहाँ कोई देखता नहीं । वनस्पतियों के सचेतन होने का यहाँ विशेष विचार किया है[६२], जो जैन सिद्धान्त के अनुसार है ।

नारद-पर्वतक और वसु की कथा, जो महाभारत के शान्तिपर्व में तथा विमलसूरि के 'पउमचरियं' में उद्धृत है, वही कथा वसुदेवहिण्डी में गद्यस्वरूप में प्रस्तुत है । 'अज' शब्द के दो अर्थ है - एक छल छगल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और दूसरा अंकुरित न होनेवाले जौ । इसमें से दूसरा अर्थ यहाँ नारद को अपेक्षित है तो उन्होंने 'दयापक्ष'[६३] से लगाया है । यह नारद पशुवधरहित तथा सम्पूर्ण अहिंसावादी यज्ञ का पुरस्कर्ता है । वितथवादी पर्वतक जब स्वयं के जिह्वाछेद पर उतर आता है, तब नारद इस प्रकार की हिंसा का निषेध करता है । सगर की कथा सुनकर अन्तिमतः यह नारद प्रव्रजित होता है ।[६४] अहिंसावादी, पशुयज्ञविरोधी नारद की 'प्रव्रज्या' याने 'दीक्षा' का यह उल्लेख वसुदेवहिण्डी की अपनी विशेषता है ।

(३) नेमिनारद :

वसुदेवहिण्डी में ही 'नेमिनारद' नाम के व्यक्तिसम्बन्धित कुछ वृत्तान्त हैं । यह नारद, नेमि याने अरिष्टनेमि के तीर्थ में हुआ है । यह नारद कृष्ण, रुक्मिणी, सत्यभामा तथा प्रद्युम्न से जुडा हुआ है । कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है । नारद के द्वारा सत्यभामा तथा रुक्मिणी के बीच यह नारद 'कलह' नहीं खडा करता । इस नारद की अवज्ञा तथा अनादर किसी भी स्त्री के द्वारा नहीं होता । प्रद्युम्न के अपहरण के प्रसङ्ग में यह रुक्मिणी की मदद करता है । यह सर्वसंचारी है तथा उत्पतनी-विद्या का धारक है । वासुदेव इसके बारे में कहते हैं, ''सो एस --अम्हाणं कुलस्स अलंकारभूओ जह रिसीणं णारदो ।''[६५]

(४) कच्छुल्लनारद :

वसुदेवहिण्डी में कच्छल्लनारद के सम्बन्ध में एक-दो संक्षिप्त वृत्तान्त आये हैं । 'कच्छुल्लनारद' शब्दप्रयोग से लगता है कि लेखक को ज्ञाताधर्मकथा का नारद अपेक्षित है । ज्ञाताधर्म में जो असंयत, कलहप्रिय तथा भ्रमणशील नारद अंकित किया है उसकी थोडीसी झलक यहाँ दिखायी देती है । 'कच्छुल्लनारद' विशेषण को लेखक टाल नहीं सका लेकिन द्रौपदी का अपहरण, द्रौपदीद्वारा अनादर आदि सन्दर्भ उन्हें मंजूर नहीं है । एक अन्य जगह स्त्रियों द्वारा अनादर दिखाया तो है लेकिन एक नाट्यप्रयोग में बर्बरी, किराती आदि स्त्रियों के द्वारा दिखाया है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कच्छुल्लनारद के सन्दर्भ में लेखक कहते हैं कि, ''**कच्छुल्लनारयस्स य विज्जाऽऽगमसीलरूवअणुसरिसा सव्वेसु खेत्तेसु सव्वकालं नारदा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवंति ।''[६६] अर्थात् यह स्पष्ट होता है कि युगयुग में होनेवाले कच्छुल्लनारद की परिकल्पना त्रिलोकप्रज्ञप्ति के अनुसार इन्हें भी मंजूर है ।

वसुदेवहिण्डी में उद्धृत सभी नारदविषयक सन्दर्भों की छानबीन करने के बाद यह लगता है कि इनके सामने, इनके पूर्व जो-जो भी नारद प्रस्तुत किये गये हैं उन सभी का समावेश यहाँ कहीं ना कहीं किया है । लेकिन पउमचरियं से 'अज-वसु' वृत्तान्त स्वीकार करके भी इन्होंने नारद को रामचरित से कहीं भी जोडा नहीं है । इससे यह स्पष्ट होता है कि ''नारद एक है, दो हैं, तीन हैं या युगयुग में होनेवाले अनेक हैं'' इसके बारे में वसुदेवहिण्डी के लेखक कुछ संभ्रमित अवस्था में ही है । लेकिन उनके प्रस्तुतीकरण की शैली से यह विदित होता है कि उनका झुकाव आदरणीय नारद के प्रति जादा है ।

आख्यानकमणिकोश-टीका में 'कलहप्रिय' नारद :

आख्यानमणिकोश-टीका में (बारहवीं सदी) नारदसम्बन्धी वृत्तांत चार अलगअलग कथाओं में आये हैं । **जैन तथा हिन्दु परम्परा में बिखरे हुए अनेक वृत्तान्तों से लेखक ने चार वृत्तान्त इस प्रकार चुने हैं जिसमें नारद की कलहप्रियता एवं युद्धप्रियता स्पष्टतः दिखायी देती है । कालविपर्यय तथा एकांगी चित्रण आख्यानकमणिकोश के नारद की विशेषता है । नायाधम्मकथा का कच्छुल्लनारद ही इसका प्रेरणास्थान है ।** एक जगह नारद का उल्लेख 'ऋषिनारद' के तौर पर किया है लेकिन ऋषिभाषित का यहाँ कोई भी जिक्र नहीं किया है ।

ऋषभदेव के युद्धपर उतरे हुए पुत्रों की खबर नारद, विद्याधर प्रल्हाद राजा को देता है । राम और रावण के बीच संघर्ष के बीज भी नारद द्वारा ही बोये गये हैं । द्रौपदीद्वारा अपमानित होकर, उसके अपहरण के लिए पद्मनाभ राजा को यही नारद उकसाता है । सत्यभामा से अपमानित होने के कारण यह कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह करवाता है ।[६७] इनका 'ब्राह्मणत्व' तो लेखक ने स्पष्ट किया है लेकिन इनका प्रत्येकबुद्धत्व या प्रव्रज्या आदि के कोई संकेत नहीं दिये हैं । कालविपर्यासात्मक संभ्रमावस्था तो इनमें है लेकिन नारद की कलहप्रियता के बारे में उनकी द्विधावस्था नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलोपदेशमाला में 'जनमारक' नारद :

बारहवी सदी में जयसिंहगणि ने जैन महाराष्ट्री भाषा में रचे हुए शीलोपदेशमाला ग्रन्थ में 'नारद' के सन्दर्भ में प्रयुक्त एकमेव श्लोक नारदसम्बन्धी सम्भ्रमावस्था का अत्युच्च शिखर माना जा सकता है । वे कहते हैं -

कलिकारओ वि जनमारओ वि सावज्ज-जोगनिरओ वि ।
जं नारओ वि सिज्झइ तं खलु सीलस्स माहप्पं ॥ गाथा क्र० १२

जिस शील के माहात्म्य का यहाँ जिक्र किया है उस शीलपालन की तार्किक असंभाव्यता इस गाथा में निहित है । कलिकारक, जनमारक तथा सावद्ययोगनिरत नारद इस जन्म में 'शीलपालन करनेवाला होना' कतई सम्भव नहीं है । जैन परम्परा के अनुसार बीच के जन्म में अगर उसने नरक अथवा देवगति प्राप्त की है तो इन दोनों गतियों में व्रतधारण शीलपालन आदिरूप पुरुषार्थ की भी गुंजाईश नहीं है । इसलिए गाथा की द्वितीय पंक्ति में नारद के सिद्धगति प्राप्त करने का उल्लेख हम संभ्रमावस्था का द्योतक मान सकते हैं ।

इस ग्रन्थ की बालावबोध-टीका में मेरुसुन्दरगणि ने पर्वतक-नारद वृत्तान्त, रुक्मिणी-सत्यभामा वृत्तान्त तथा नारद की उपाध्याय द्वारा परीक्षा आदि कथाएँ संक्षेप में उद्धृत की हैं । लेकिन नारद के 'जनमारक' होने का उदाहरण टीका में प्रस्तुत नहीं किया है । टीकाकार की दृष्टि नारद के प्रति मूल लेखक से अधिक आदरणीयता की दिखायी देती है ।[६८]

भागवतपुराण में नारदविषयक 'परस्परविरोधी अंश' :

भागवतपुराण के प्रायः सभी स्कन्धों में नारदविषयक उल्लेख भरे पडे हुए हैं । वे सब अंश अगर एकत्रित किये जाए तो उनमें परस्परविरोधिता स्पष्टतः नजर आती है । जैसे कि- व्यासद्वारा देवर्षि नारद की विधिपूर्वक पूजा[६९], ब्रह्मा के इन्द्रियों से नारद का प्रगट होना[७०], भगवान् की कृपा से त्रैलोक्यसंचारी होना[७१], विष्णु के चौबीस अवतारों में से तिसरा अवतार होना[७२], दक्षपुत्रों को नारद द्वारा गृहस्थाश्रमी न बनकर विरक्त होने का उपदेश[७३], दक्ष के शाप से प्रभावित होकर ब्रह्मचारी बनना तथा कलह मचाते हुए भ्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना[७४], कंस को देवकी के सब पुत्र मारने की सलाह देना[७५], सावर्णि मनु-प्राचीनबर्ही-प्रचेता तथा धर्मराज आदि को ज्ञानोपदेश देना[७६] आदि ।

श्रामणिक परम्परा का और विशेषतः उत्तराध्ययन में निहित यज्ञविषयक विचार[७७] की याद दिलानेवाला एक विशेष उल्लेख भागवतपुराण में पाया जाता है । गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म का वर्णन करते हुए नारद कहता है कि, "किसी भी प्राणी को मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय। इसीसे कोई कोई यज्ञ तत्त्व को जानेवाले ज्ञानी, ज्ञान के द्वारा प्रज्वलित आत्मसंयमरूप अग्नि में इन कर्ममय यज्ञों का हवन कर देते हैं और बाह्य कर्मकलापों से उपरत हो जाते हैं ।" उत्तराध्ययन के यज्ञविषयक विचारों का भागवतपुराण के साथ शब्दसाम्य होना बहुत ही लक्षणीय बात है । ऋग्वेद[७८], अथर्ववेद[७९] ऐतरेय ब्राह्मण[८०] तथा महाभारत[८१] में नारद का अहिंसक यज्ञ के प्रति जो झुकाव स्पष्टतः दिखायी देता है वही प्रवृत्ति भागवतपुराण के उपर्युक्त उल्लेख में निहित है । लेकिन ऋग्वेद से लेकर महाभारत तक नारद का जो सुसंगत, हिंसकयज्ञविरोधी तथा आदरणीय चित्रण दिखायी देता है वह भागवतपुराण में कलहप्रियता, स्त्रियों के सम्पर्क में रहना आदि निन्दनीय अंशों से युक्त होकर संभ्रमावस्था में दिखायी देता है । किन्तु नारद के प्रति आदरणीयता भी बारबार दिखायी गयी है ।

अर्धमागधी आगमग्रन्थ ऋषिभाषित में नारद का जो आदरणीय स्थान है उसकी पुष्टि हम महाभारत तक के ग्रन्थों में निहित नारदविषयक आदरणीयता से कर सकते हैं । अर्धमागधी आगमग्रन्थ ईसवी की पाँचवी शताब्दी में लिखित स्वरूप में आए । नन्दी[८२] और अनुयोगद्वारसूत्र[८३] इन ग्रन्थों में 'महाभारत' का उल्लेख 'भारत' (भारह) शब्द से किया है मतलब महावीर के काल में महाभारत के द्वितीय संस्करण की प्रक्रिया जारी रही होंगी । अगर ऋषिभाषित को महावीरवाणी मानी जाय तो समकालीन समाज में प्रचलित नारदविषयक आदरणीय अवधारणा ही उसमें प्रतिबिम्बित दिखायी देती है।

यद्यपि नायाधम्मकहा ग्रन्थ अर्धमागधी अङ्गआगमग्रन्थों में गिनाया जाता है तथापि प्राकृत के अभ्यासकों ने भाषा और विषय की दृष्टि से उसे पाँचवी-छठी शताब्दी के बाद का ही ग्रन्थ माना है । प्रायः चौथी-पाँचवी शती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्राकृत कथात्मक जैन ग्रन्थोंपर भागवतपुराण, विष्णुपुराण आदि में निहित अंशों का समान्तर रूप से प्रभावित होता जा रहा है, यह बात दिखायी देती है । इसी वजह से नायाधम्म तथा उत्तरवर्ती अनेक कथाग्रन्थों में नारद का अनादरणीय रूप ही दृग्गोचर होता है ।

उपसंहार :

- जैन परम्परा ने नारद को 'ऋषि', 'देवनारद' तथा 'अनगार' इन शब्दों से व्याहृत किया है । उसे कहीं भी 'महर्षि' तथा 'देवर्षि' सम्बोधित नहीं किया है ।
- दोनों परम्पराओं ने नारद का 'ब्राह्मणत्व' तथा 'ब्रह्मचर्यत्व' स्पष्टता से कहा है । नारद का जटासहित होना, पादुका तथा कमण्डलु धारण करना, वीणावादन आदि शारीरिक विशेषताएँ भी जैन परम्परा ने प्रायः बरकरार रखी हैं ।
- ऋग्वेद से ही सूचित होनेवाला तथा महाभारत में भी प्रतिबिम्बित 'यज्ञीय हिंसा' का विरोध, तीव्र ज्ञानलालसा तथा उसका सर्वसंचारित्व ये गुण जैन परम्परा को अपनी मान्यताओं के अनुकूल लगे होंगे। इसी वजह से जैन साहित्य ने 'नारद' की व्यक्तिरेखा कई सदियों तक जारी रखी ।
- दोनों परम्पराओं ने नारद 'एक है, दो हैं, अनेक है या युगयुग में होनेवाले हैं' इसके बारे में स्पष्ट निर्देश नहीं दिये हैं । जिस लेखक ने नारद की ओर जिस दृष्टि से देखा उसी तरह से उसे प्रस्तुत किया है । इसलिए नारद कहीं 'देवनारद' है, कहीं 'नारदपुत्त' है तो कहीं नारदीय 'परिव्राजक' है । कालविपर्यास भी दोनों परम्पराओं में समानता से दिखायी देता है । इसके फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि जैन सिद्धान्तों से कुछ अंशों से मिलनेवाली एक विचारधारा वैदिक तथा वेदोत्तरकाल में भी जारी थी जिसका विचार महावीर के काल से पन्द्रहवी सती तक के जैन साहित्य में अनुस्यूत होता रहा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा महाभारत में नारद पशुहिंसासमर्थक याज्ञिकों से संवाद-चर्चा तथा वादविवाद करते हुए दिखायी देता है । उत्तरकालीन पौराणिक परम्परा ने यह अंश 'कलहप्रियता' में रूपांतरित किया । फिर भी 'नारद का कलह अन्तिमतः कल्याणकर होता है' इस प्रकार नारद की कलहप्रियता का समर्थन भी किया । पाँचवी-छठी शताब्दी के अनंतर के जैन ग्रन्थों में कलहप्रियता का यह अंश ज्यादा ही आगे बढाकर उसे अपहरण, युद्ध आदि से जोड दिया।
- दोनो परम्पराओं ने नारद, स्त्रियों के सम्पर्क में रहने की बात तो अधोरेखित की है लेकिन जैन साहित्य में स्त्रियों के कलहप्रिय स्वभाव को अग्रस्थान में रखकर कलह-अपहरण आदि प्रसङ्ग के लिए नारद को जिम्मेदार ठहराया है ।
- वैदिक परम्परा ने नारद को 'देवर्षि' ही माना । जैनियों ने यद्यपि उनके दैवतशास्त्र में यथानुकूल स्थान दिया तथापि 'निम्नजातीय वानव्यन्तरों' में भी उन्हें रखा तथा पाँचवे ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में भी 'नारद' नाम का स्पष्ट निर्देश न करके देवर्षियों को रखा ।
- भागवतपुराण आदि ग्रन्थों में नारद का भगवद्भक्त होना, कृष्ण के गुणों का नामसंकीर्तन करना आदि के रूप में नारद का नाम भक्तिसम्प्रदाय का द्योतक होने लगा । जैन ग्रन्थों में यद्यपि नारद का सम्बन्ध गन्धर्वविद्या से जोडा है तथापि यह अंश भक्तिसम्प्रदाय में परिणत नहीं हो सका । क्योंकि जैन मान्यतानुसार 'कृष्ण' एक वासुदेव है जो उच्च आध्यात्मिक आदर्श के रूप में मान्यताप्राप्त नहीं है ।
- वेदोत्तरकालीन परम्परा में नारद के नाम पर नारदी शिक्षा, नारदोपनिषद्, नारदस्मृति तथा नारदपुराण आदि ग्रन्थ निर्माण हुए । उस परम्परा में नारद का महत्त्व इस प्रकार अधोरेखित होता है । जैन परम्परा ने नारदीय विचारधारा का समादर तो किया है लेकिन उत्तरवर्ती ग्रन्थों में केवल 'एक मिथक' के रूप में ही उसकी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष :

नारदविषयक जैन उल्लेखों में सबसे प्रचीन उल्लेख अर्धमागधी ग्रन्थ ऋषिभाषित में पाया जाता है । वहाँ नारद को अर्हत्, ऋषि तथा देव शब्द से सम्बोधित किया है । नारद को सिद्ध, बुद्ध और मुक्त भी कहा है । प्राचीन जैन दार्शनिकों के उदारमतवादी दृष्टिकोण का यह अत्युच्च शिखर है ।

धीरे धीरे हिन्दु पौराणिक मान्यताओं के अनुसार नारद के व्यक्तिमत्व में नये नये अंश जुडते गये, पुराने अंश ओझल होने लगे । नारद को सर्वादरणीय स्थान देने में जैन आचार्य भी झिझकने लगे । सामाजिक मान्यताओं के साथ साथ अन्तर्गत साम्प्रदायिक अभिनिवेश भी बढने लगा । परिणामवश नारद के व्यक्तित्व के बारे में संभ्रमावस्था पैदा हुई । पूरी आदरणीयता और पूरी अनादरणीयता के बीच नारद के बारे में वैचारिक आन्दोलन चलते रहे ।

इस संभ्रमावस्था का हल वैयक्तिक स्तर पर निकालने के प्रयास हुए। इसी वजह स्थानाङ्ग में उसे देव कहा है । समवायाङ्ग में भावी तीर्थङ्कर कहा है । भगवतीसूत्र में सिर्फ उसकी जिज्ञासा पर प्रकाश डाला है । तत्त्वार्थसूत्रकार ने दैवतशास्त्र में दो विभिन्न स्थान तय किये हैं । ज्ञाताधर्म में वह सिर्फ कच्छुल्लनारद है । औपपातिक में नारदीय परिव्राजकों की परम्परा है । आवश्यकनिर्युक्ति तथा टीका में नारदोत्पत्ति की अभिनव कथा है । त्रिलोकप्रज्ञप्ति के नारद अतिरुद्र है । शीलोपदेशमाला में उसे जनमारक कहा है । वसुदेवहिण्डी में तो नारद के विविध रूप रेखांकित किये हैं । आख्यानमणिकोशकार का नारद कलहप्रिय है । और विमलसूरि ने नारद को एक मिथक के रूप में मनःपूत उपयोजित किया है । विशेष बात यह है कि जैन नारद में दिखायी देनेवाले ये सब परिवर्तन लेखक की वैयक्तिक दृष्टिकोण से जुडे हुए हैं, कालानुसारी नहीं है । भक्ति तथा कीर्तन-संकीर्तन से सम्बन्ध जुडने के बाद तो नारद जैन साहित्य से ओझल ही हो गया ।*

C/o. सन्मति ज्ञानपीठ
पुणे

टि. * इस लेख पर टिपण्णी अगले अंकमें दी जायेली । -सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ

१. ऋषिभाषित १.२, ११
२. ऋग्वेद ८.१३.३१
३. वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड
४. आवश्यकटीका पृ. ७०६-अ-पंक्ति ७
५. ऋषिभाषित १.२
६. स्थानांग ४.१२४
७. स्थानांग ७.४३;८.११६; ७.११३-१२२
८. भागवतपुराण दशम स्कन्ध ; अद्भुत रामायण ७
९. देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमांश्चराम्यहम् ॥ भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध ; हरिवंश १.४८.३५
१०. समवायांग प्रकीर्णक सूत्र २५१-२५२
११. भागवतपुराण १.३.८
१२. उत्तरपुराण ७६.४७१-४७५
१३. प्रवचनसारोद्धार गाथा क्र. ४६८
१४. भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देशक ८
१५. छांदोग्य उपनिषद ७.१.१
१६. महाभारत, शांतिपर्व ३४६.१०-११; ३४८.६-८, नारायणीय उपाख्यान
१७. भागवतपुराण दूसरा स्कन्ध
१८. तत्त्वार्थसूत्र ४.१२ और उसकी टीका पृ. १०१
१९. पन्नवणा प्रथम पद सूत्र १३२; प्रज्ञापनाटीका (मलयगिरी) पृ. ७०
२०. तत्त्वार्थसूत्र १.२१, २२
२१. रामायण बालकाण्ड
२२. भागवत पुराण १.५
२३. ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः । तत्त्वार्थसूत्र ४.२५, २६ और उसकी टीका
२५. भागवतपुराण १.५
२६. औपपातिक सूत्र ९६
२७. ज्ञाताधर्मकथा १.१६.१८५, १८६-१९०, १९६-२०१, २२६, २२७-२३२
२८. ज्ञाताधर्मकथा १.१६.१८५
२९. दशवैकालिकटीका ३.१८८, १९२
३०. कल्पसूत्रटीका पृ. २८-३१
३१. आख्यानमणिकोश, सुपात्रदानवर्णनाधिकार पृ. ४६
३२. प्रवचनसारोद्धार
३३. शीलोपदेशमाला - बालावबोध पृ. ११-१३
३४. उपदेशपदटीका गाथा ६४५-६४८
३५. ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ७
३६. वाल्मीकि-रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग-२०
३७. विष्णुपुराण ५.३०
३८. मार्कण्डेयपुराण १.३०-४७
३९. महाभारत, अनुशासन पर्व ७३
४०. औपपातिक सूत्र ९६
४१. औपपातिकटीका (घासीलालजी महाराज) पृ. ५३९-५५८
४२. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १२९५-१२९६
४३. आवश्यकटीका पृ. ७०५-७०६
४४. महाभारत आश्वमेधिक पर्व ९३.२,५, ९; सभापर्व २.२२५.७
४५. मनुस्मृति ५.१०६, १०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १९२ की टीका
४७. भागवतपुराण १.५
४८. वायुपुराण २.४.१३५-१५०
४९. ब्रह्मांडपुराण ३.२.१८
५०. ब्रह्मवैवर्तपुराण १.१३
५१. त्रिलोकप्रज्ञप्ति ४.१४६९-१४७३
५२. पउमचरीयं ११.२५, ११.७५-८१
५३. 'दीहजडामउडभासुरं' पउमचरियं २८.३
५४. पउमचरियं ११.८२-८४
५५. पउमचरियं ११.२५
५६. पउमचरियं २८.७-१९
५७. पउमचरियं ७८.८-२२
५८. पउमचरियं ९८.४८, ४९
५९. पउमचरियं ९९.४-९
६०. पउमचरियं १००.२८
६१. ''पगीया तुंबरु-णारद-हाहा-हूहू-विस्सावसू य सुतिमहुरं सवणासण्णं थुणमाणा 'उवसम भयवं !' ति जिणणामाणि खमागुणे य वण्णेंता ।''
वसुदेवहिण्डी गन्धर्वदत्ता लम्भ पृ. १२७, १३०
६२. तत्थ चिंतेइ-वणस्सइओ सचेयणाओ पस्संति । 'जत्थं न कोइ पस्सति तत्थ णं वहेयव्वो' । 'अवज्झो एसो नूणं' । वसुदेवहिण्डी सोमसिरिलंभ पृ. १८९
६३. नारएण निवारिओ - मा एवं भण, समाणो वंजणाहिलावो, अत्थो पुण धण्णेसु निपतति दयापक्खण्णुमतीए य त्ति । वसुदेवहिंडी सोमसिरिलंभ पृ. १९०
६४. वसुदेवहिण्डी सोमसिरिलंभ, पृ. १९०
६५. वसुदेवहिण्डी पृ. १०८
६६. वसुदेवहिण्डी पृ. ३२५
६७. आख्यानमणिकोश (अ) सुपात्रदानवर्णनाधिकार में नागश्रीब्राह्मणीआख्यान, पृ. ४६
(आ) शीलमाहात्म्यवर्णनाधिकार में सीताख्यान, पृ. ५९
(इ) तपोमाहात्म्यवर्णनाधिकार में रुक्मिणीमध्वाख्यान, पृ.७२-७४
(ई) भावनास्वरूपवर्णनाधिकार में भरताख्यान, पृ. ८६
(उ) नारएण नारायणस्स कहियं । पृ. ७६-७९
६८. शीलोपदेशमाला-बालावबोध, पृ. ९-१३ (शीलोपदेशमाला गाथा १२ के ऊपर टीका (बालावबोध))
६९. भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध
७०. भागवतपुराण ३.१२.२८
७१. भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध
७२. भागवतपुराण १.३.८
७३. भागवतपुराण ६.५.३०-३३
७४. भागवतपुराण ६.५.३७-३९
७५. भागवतपुराण १.१.६४
७६. भागवतपुराण १.३.८; ५.१९; ४.२५-३१; ७.१३-३५
७७. (अ) तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥ उत्तराध्ययन २५.२३
(आ) तवो जोइ जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मेहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥ उत्तराध्ययन १२.४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७८. ऋग्वेद ८.१३.३०
७९. अथर्ववेद १२.४.४२
८०. ऐतरेय ब्राह्मण ७.१३
८१. महाभार, शान्तिपर्व, उपरिचर वसु राजा
८२. नन्दीसूत्र, सूत्र ४२

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचि

१. अथर्ववेद : भाषांतरकार – सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मंडळ, पुणे, १९६९
२. आवश्यकसूत्र : भद्रबाहु (निर्युक्ति) आणि हरिभद्रसूरिटीकासहित, आगमोदय समिति, महेसाणा, १९१६
३. उत्तराध्ययन (उत्तरज्झयण) : सं. मुनि पुण्यविजय, महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, १९७७
४. उपदेशपद (उवएसपय) : आ. हरिभद्र, सं. प्रतापविजयगणि, बडोदा, १९२३
५. ऋग्वेद : भाषांतरकार – सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मंडळ, पुणे, १९६९
६. ऋषिभाषित (इसिभासिस) : सं. डॉ. वाल्थर शुब्रिंग, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, १९७४
७. ऐतरेय ब्राह्मण : सं. धुण्डिराज गणेश दीक्षित बापट, स्वाध्याय मन्दिर, पांचवड, सातारा, शके १८६३
८. औपपातिक (उववाई) : उवंगसुत्ताणि ४ (खण्ड २), जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान), १९८६
९. ज्ञाताधर्मकथा (नायाधम्मकहा) : अंगसुत्ताणि ३, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.स. २०३१
१०. तत्त्वार्थसूत्र : वाचक उमास्वाति,विवेचक – पं. सुखलालजी संघवी, सं. डॉ. मोहनलाल महेता, जैन पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, २००१
११. त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोय-पण्णति) : आ यतिवृषभ, सं. प्रो. आदिनाथ उपाध्याय, प्रो. हीरालाल जैन, जीवराज जैन-ग्रन्थमाला १, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, १९४३
१२. दशवैकालिकटीका : हरिभद्रसूरि, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९१८
१३. पउमचरियं : विमलसूरि, सं. डॉ. एच्. जेकोबी, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, १९६२
१४. प्रज्ञापना : उवंगसुत्ताणि ४ (खण्ड २), आ. महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, १९८९
१५. प्रज्ञापनाटीका : मलयगिरी, आगमोदयसमिति, महेसाणा, १९१८
१६. भगवती (भगवई) : अंगसुत्ताणि २, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१
१७. भागवतपुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
१८. भारतीय संस्कृतिकोश : सं.पं. महादेवशास्त्री जोशी, भारतीय संस्कृतिकोश मंडळ पुणे, १९६२
१९. मनुस्मृति (सार्थ सभाष्य) : सं. स्वामी वरदानन्द भारती, श्रीराधादामोदर प्रतिष्ठान, पुणे, १९२३
२०. महाभारत : शान्तिपर्व, सं. डॉ. पं. श्री दा.सातवलेकर, पारडी, १९८०
२१. समवायाङ्ग : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान) वि.सं. २०३१
२२. स्थानाङ्ग (ठाण) : अङ्गसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंगावलोकन
(अंक ४६-४७-४८ नुं)

– उपा. भुवनचन्द्र

'अनुसन्धान'ना ४६मा अंकमां अप्रगट कृति लेखे एक ज संस्कृत रचना छपाई छे ज्यारे संशोधन लेखो ६ जेटला छे. संशोधनलेखो पण प्राचीन जैन साहित्य तथा संस्कृत-प्राकृतना अनुसन्धानकार्यनो ज एक भाग छे ए दृष्टिए 'अनु०'मां आवा लेखो हवे प्रकाशित थवा लाग्या छे ते आवकारपात्र ज छे, किन्तु अप्रसिद्ध नानी-मोटी संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश वगेरे भाषानी कृतिओ 'अनु०' द्वारा जे रीते प्रकाशमां आवे छे ते प्रवृत्ति गौण न बनी जाय ते जोवा सम्पादकश्रीने विनंती करवानुं मन थाय छे. लघुकृतिओ अप्रकाशित थाय एमां द्विविध लाभ छे : अप्रगट सामग्री प्रकाशमां आवे अने नवोदित सम्पादकोने सम्पादन-संशोधननी तालीम मळे.

'अभयाभ्युदय महाकाव्य' काव्य अने कथा बन्नेना लक्षण धरावती रचना छे. एने 'खण्डकाव्य' पण कही शकाय तेम नथी, कारण के काव्यनो मोटो भाग चरित्रात्मक छे.

सम्पादकोए पर्याप्त विचारणा अने परिश्रम साथे कृतिनुं सम्पादन कर्युं छे. आ रचनानी ताडपत्रीय प्रतो छे पण आ सम्पादनमां तेमनो आधार लेवायो नथी. पाठ शुद्धप्राय छे. सर्ग ४, श्लोक. ८मां **'वदति स'** ए जो मुद्रणदोष न होय तो कदाच वाचनभूल हशे. अहीं 'वदति स्म' पाठ होवो घटे.

'एक फूटफळ पत्र'मांथी मळेली शब्द सूचि रसप्रद छे. प्राकृत के देश्य शब्दोना संस्कृत पर्यायो आभासी शब्द-सादृश्यना आधारे घडी काढवानी एक प्रथा एक समये हती. व्यवहार माटे ए कार्यक्षम होवा छतां एमां भाषाना, ध्वनिना तथा अर्थविकासना नियमो सदंतर उपेक्षा पामता हता. प्रस्तुत सूचिगत शब्दोनी अर्थ अने व्युत्पत्तिनी दृष्टिए सुन्दर चर्चा सम्पादके करी छे. एमांना केटलाक शब्दो अंगे टिप्पणी-

– **'पडूचउं'** 'प्रतिभाव्य' ना पर्याय तरीके बराबर छे परंतु 'प्रतिभाव'मांथी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पडूचउं' विकसी शके नहि. एनुं मूळ कदाच 'प्रतीत्य' (प्रा. पडुच्च) होइ शके. आ सं.भू.कृ. नो प्रयोग 'ने कारणे', 'ने माटे' एवा अर्थमां थतो हतो, क्रमशः 'अमुक वस्तुनी सामे' (जामीन माटेनी वस्तुनी सामे) एवो अर्थ विकस्यो होय अने भू.कृ.नो सन्दर्भ भूलाई, वस्तुवाचक नाम तरीके आ शब्द 'पडूचउं' बन्यो होय.

– '**चहुण्टी**'नो अर्थ चोंटियो, चूंटली, चूंटी छे एम चोक्कस कही शकाय तेम छे, कारण के कच्छी भाषामां 'चोंढडी' रूपे आ ज अर्थमां शब्द मळे छे.

– '**वेगडि**'नो अर्थ 'खुल्ला मोटा शींगड़ावाळी गाय' ए सूचिगत सं. पर्याय 'विकटशृङ्गी'ना आधारे करायो छे. श्रीकोठारीए 'विकटशृङ्गी'ने मूळ तरीके मान्य नथी राख्यो, पण 'विकट' राख्यो ते तो योग्य ज छे, परंतु 'खुल्लां मोटां शींगड़ावाळी गाय' तेमणे स्वीकार्यो होय तो ते सुधारवा जेवो छे. आनो सन्दर्भ पण कच्छी भाषामांथी मळे छे. कच्छीमां 'वोड़ो/वोड़ी' शब्द प्रयोगमां छे, जेनो अर्थ 'किशोरवयनो वाछरडो' के 'किशोरवयनी गाय' थाय छे. आ अवस्थामां शींगड़ां फूट्यां होय छे पण मोटां के पूरां विकसित नथी होतां. आथी 'जेनां शींगड़ां मात्र नीकळ्यां छे एवी गाय' – एवो अर्थ स्पष्ट थाय छे.

– '**आडण**' नो अर्थ अर्थ 'अंगशोभा' नहि पण 'अंगशोभा माटेनुं वस्त्र' थतो होवो जोईए. आनो आधार पण कच्छी 'आडियो' शब्द पूरो पाडे छे. पुरुषो चोरणा ऊपर एक कपडुं आडुं बांधता, जेनो उद्देश सभ्यता (मर्यादा)नो हतो अने 'शोभा'नो अर्थ पण एमां समायेलो छे ज.

– '**पाथरणुं**'नो पर्याय 'प्रसूरण' अपायो छे, परंतु अहीं वाचनभूल थई जणाय छे. 'प्रस्तरण' होवुं घटे.

– '**अंबोडउ**'नी व्युत्पत्ति 'आम्रेडक' के 'आम्रेडित'मांथी होई शके.

'पंद्रह कर्मादान' विषयक अभ्यास लेखमां लेखिकाए चर्चाना उपसंहारमां '.... इन में से ज्यादातर... निषिद्ध नहीं थे, नहीं हैं और भविष्यकाल में तो बिलकुल निषिद्ध नहीं होंगे' एवा शब्दोमां निष्कर्ष आप्यो छे ते नवाई पमाड़े छे. लेखिका जैन परम्परानी 'अतिचार'नी विभावना अने सूत्रपाठनी शैली यथार्थ रूपे समजी नथी शक्या. वधुमां आ प्रकारना व्यवसायो सामाजिक-पर्यावरणीय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थतन्त्र आदि अनेक दृष्टिए नियन्त्रणने पात्र छे ए तथ्य पण तेमना ध्यान बहार रह्युं छे; फलतः राक्षसी उद्योगोना समर्थनमां तेमनी कलम चालती होय तेवी छाप पड़े छे.

आनी समीक्षा करतो लेख पण आ ज अंकमां छे, जेमां उपर्युक्त लेखनो मुद्दासर प्रतिवाद करवामां आव्यो छे.

मध्यकालीन गुजराती भाषाना क्षेत्रे करवा जेवां कार्योनी विशद विचारणा करतो संशोधनलेख पण आ अंकमां प्रकाशित छे. कान्तिभाई बी. शाहे आ क्षेत्रनुं महत्त्व अने हजी केटलुं केटलुं कार्य अपेक्षित छे तेनी विगतसभर विचारणा करी छे.

भ. महावीरना गर्भापहार प्रसंगनी चर्चा डॉ. जगदीश चन्द्र जैने तेमना संशोधनलेखमां करी छे. आयुर्वेदमां 'नैगमेषापहृत' जेवो गर्भ नष्ट थवानो प्रकार बतावायो छे ए जाणीने आश्चर्य थाय अने साथे साथे प्रश्न पण थाय के हरिणैगमेषी देव द्वारा गर्भापहारनी घटना बनी ते परथी भारतमां - भारतना लोकोमां अने आयुर्वेदमां - आ प्रकार परिगणित थयो के पछी भ. महावीर सम्बन्धित जे कोई घटना बनी तेनुं आयुर्वेदमां परापूर्वथी परिगणित एवा आ प्रकारना रूपे चित्रण करी समाधान आपवानो प्रयत्न थयो हतो ? निर्णय पर आववानुं कठिन छे; ब्राह्मण-क्षत्रिय कुलने स्पर्शती कोई घटना बनी छे जरूर. शास्त्रकारो एने आध्यात्मिक-वैश्विक दृष्टिकोणथी समजावे, इतिहासविदो ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टिकोणथी विचारे ए स्वाभाविक छे. आमां हवे आयुर्वेदिक दृष्टिकोण उमेराय छे. आ संशोधनलेख अन्तिम निर्णय सुधी भले न पहोंचाड़े पण एक मौलिक नूतन अभिगम अवश्य पूरो पाड़े छे.

जैन महाराष्ट्री प्राकृत साहित्यनी लाक्षणिकताओ पर प्रकाश पाड़ता डॉ. नलिनी जोशीना अंग्रेजी संशोधन लेखमां जैन साहित्यना इतिहासमां अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश भाषाओना प्रयोगना तबक्का तथा तेना सम्भवित कारणोनी विचारणा थई छे.

पंदर कर्मादान विषयक लेखनी समीक्षानो लेख मुनिश्री कल्याणकीर्ति-विजयजीए लख्यो छे अने गर्भापहार विषयक लेखनो प्रतिवाद करतो लेख आ. श्री शीलचन्द्रसूरिजीए लख्यो छे. परम्परागत मान्यताथी जुदी वात रजू करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यासपूर्ण संशोधनलेखोने प्रकाशित करी विद्वानोना अभ्यास परिश्रमनो अने संशोधन कार्यनो आदर करवो तथा जरूर लागे त्यां संतुलित/सौम्य प्रतिवाद करवो – सम्पादक आचार्यश्रीनो आ अभिगम स्वस्थ, स्तुत्य अने विरल-दुर्लभ ज छे.

❁

बे सुप्रसिद्ध जैन शास्त्रकार सूरिपुरन्दरोनी बे अप्रसिद्ध कृतिओ – छन्दोनुशासन अने तेनी टीका – 'अनु०' ४७मां प्रगट थई छे. मूळ ग्रन्थकार एक महान संघनायक आचार्य छे अने ए ग्रन्थना टीकाकार एक प्रतिभासम्पन्न बहुमान्य व्याख्याकार तथा सर्जक आचार्य छे. ग्रन्थनो विषय छे प्राकृत छन्दो अने तेनी टीकानी रचना थई छे, अजित नामना श्रावकनी उत्साहभरी मागणीथी. अध्ययन-अध्यापन-सर्जन ए काळे जैन श्रमणसंघ तथा श्रावकसंघमां एक सहज आराधनाना भाग रूपे केवा व्याप्त हशे तेनी कल्पना आवी कृतिओ आपी जाय छे.

एक ज प्रतिना आधारे – ते पण तेनी फोटो कोपीना आधारे – आनी प्रतिलिपि थई छे तेथी मूळ तथा टीकाना पाठमां अशुद्धता रहेवा पामी छे. पाठ न समजी शकायाथी वाचना पण क्यांक अस्तव्यस्त रही छे. कृतिना सम्पादक तथा 'अनुसन्धान'ना सम्पादक – एम बे विद्वानोना हाथे एनो परिष्कार थयो छे एटले कृति मोटा भागे शुद्ध थई शकी छे.

कल्पसूत्रनी एक सुवर्णाक्षरी प्रतिनी प्रशस्ति आ अंकमां छे, एमां पुष्कळ ऐतिहासिक माहिती छे. बीजा श्लोकमां अशुद्धि छे तेथी सम्पादके करेलो अर्थ पण सन्दिग्ध रहे छे. श्लो. ७मां ०जन्मात्सौ' छे त्यां '**०जन्मानौ**' पाठ कल्पी शकाय छे.

राजस्थानी भाषानी १८मी सदीनी एक रचना : 'अभयकुमार चौपाई' रसप्रद छे. सम्पादके राजस्थानी भाषाने जाळवीने सम्पादन कर्युं छे. शब्दकोशमां हजी वधारे शब्दो समाववानी जरूर हती, तेम 'दीक्षा' जेवा सुपरिचित शब्दो लेवानी जरूर न हती.

ढा. १ **विद्ध** = विधि (क. ७)
चाटू = चाटवो, डोयो (क. ११)
ढा. ३ **नौली** = नाळ, नळी (कपड़ानी लांबी थेली जेमां पैसा भरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमर पर बांधी लेवाता) (दू. ५)

चुंप = चोंप, काळजी (क. ५)

जोखौ = जोखम, भय (क. ५)

चीता = चित्तमां (क. ११)

ढा. ६ **उसरावण** = ऋणरहित (क. १६)

ढा. ८ **परही** = दूर, अळगो (क. ८)

ढा. ४ **वासणी** (ली) = वांसळी, नळी (क. १७)

ढा. ९ **रंधाणी** = रसोडुं (क. ६)

कछूलो = ? (क. १३)

ढा. १० **सकज** = कार्यकुशल, समर्थ (क. ७)

ढा. १२ **रुचिसारु** = रुचि प्रमाणे (क. ७)

ढा. २, क. ७ 'पहड' छे त्यां 'पडह' होवानी शक्यता छे. ढा.४, क. ७ 'बैंगै' छपायुं छे ते वाचनभूल अथवा दृष्टिदोष छे. अहीं 'बैगे' शब्द सुसंगत छे.

शब्दकोशमां अने मूळमां 'तड्यो' छपायुं छे त्यां पण दृष्टिदोषथी खोटुं वंचायुं छे. 'तज्यो' ज होवानी पूरी शक्यता छे. एवी रीते 'हुक्कम'छे ते पण लहियानी भूलथी थयुं हशे; आवी भूलोने पाठान्तर के अलग शब्द गणवानी जरूर रहेती नथी. ए शब्दोने सुधारा साथे लखवा जोइए. शब्दकोशमां '**भांड्या**'नो अर्थ 'फेंक्या' कर्यो छे पण ए 'भांडी' (वासण)नुं ब. व. छे. ए ज कडीमां 'भडकाई' छे, एनो अर्थ 'भटकावी, अथडावी' समजी शकाय छे.

'**वाहर**' = 'सेना' नहीं पण मदद, वार. बाहर चढियो' वारे = चड्यो. '**कूकवाजी**' अने '**तिकोजी**' – बंनेमां 'जी' शब्दनो भाग नथी, देशीमां वपरातो 'जी' छे. '**वीसवावीस**' ए 'सोळ आना', 'सो टका' जेवा अर्थनुं जूनुं क्रि. वि. अव्यय छे.

ढा. ११, क. १३ – 'जिन ध्रमशील अमोलें' एम छपायुं छे त्यां जिनध्रम शील अमोलें' एम वांचवुं जोइए. शुभ जिनधर्म अने अमोल शीलथी सुन्दर कीर्ति थाय छे एम सहु बोले छे– एवो आ पंक्तिनो अर्थ थाय छे. आमां कर्ताए पोतानुं नाम 'कीर्तिसुन्दर' श्लेष द्वारा जणाव्युं छे.

'महावीरपारणास्तवन'ना कर्ता विशे गूंचवाडो छे कारण के मुनि माल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अने मालमुनि एवा नामे बे कविओ नोंधाया छे. आवी स्थितिमां कृतिनी भाषा, शैली जेवां आन्तरिक प्रमाणो द्वारा कर्तानो निर्णय करवो पडे. प्रस्तुत कृतिनी भाषा १७मा सैकानी नहि पण १८मा-१९मा सैकानी जणाय छे, वळी 'मुनि माल' रूपे कर्तानुं नाम हाजर छे तेथी लोंकागच्छीय मुनि मालनी ज कृति छे एम मानवामां कशी हरकत नथी. अन्तिम कडीमां 'रसाणी' छे त्यां 'रसाल' प्रासना अनुसारे समजी शकाय छे.

जैन ह. लि. भण्डारोमां एक व्यक्तिविषयक सौथी वधारे रचनाओ जो कोईनी मळती होय तो ते नेम-राजुलनी ज हशे. आ अंकमां नेम-राजुलनी २ पद्यरचनाओ तथा एक 'स्थूलिभद्रचोमासुं' एम त्रण रचनाओ छे जे काव्यरसयुक्त छे. नेमगीत, क. ४ - 'पसुआ मि' छे त्यां 'पसुआ **मिषि**' होवा संभव छे. क. ७मां 'दोकु' छे त्यां '**दोऊ**' होवुं घटे. 'ऊ' वाचनभूलथी 'कु' तरीके वंचायो छे.

'रामायण'ना जैन रूपान्तरो' ए शीर्षकवाळा अंग्रेजी शोधलेखमां जैन-अजैन रामायणनी तुलनात्मक विचारणा सुन्दर रीते थई छे. लेखिका जणावे छे के समग्र रीते जोतां रामायणना जैन रूपान्तरोमां महिलाओना पात्रो वधु सम्मानित रूपे रजू थया छे. वधु वास्तवदर्शी घटनाक्रम अने कर्मसिद्धान्तनुं महत्त्व - ए बे लक्षण पण जैन रामायणोनी विशेषता छे. शीलाङ्काचार्य अने संघदासगणीनी कृतिओ वाल्मीकिकृत रामायणने अनुसरे छे ज्यारे विमलसूरि हेमचन्द्राचार्य अने दिगं. रविषेण, गुणभद्र आदिनी कृतिओमां जैन रूपान्तरण विशेष दृष्टिगोचर थाय छे- एवा निष्कर्ष पण लेखिका आपे छे.

'ध्यानदीपिका' नामक बे रचनाओनी समीक्षा/तुलना करता लेखमां 'ज्ञानार्णव' साथे ते बेयनी सरखामणी करी, ए रचनाओ 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ पर आधारित छे एवो निष्कर्ष अपायो छे. साहित्य अने इतिहास क्षेत्रे निष्पक्ष-निर्भीक समीक्षा द्वारा घणां तथ्यो बहार आवे छे अने स्पष्ट थाय छे तेथी तुलनात्मक परीक्षण हमेशां आवकारपात्र होवुं जोइए.

★

अनु० ४८मां प्रकाशित प्राकृतभाषानी दीर्घ रचना 'आणंदादिदस उवासगकहाओ' एक संकलनात्मक कृति छे, परन्तु आगमिक विषय परना प्रभुत्व तथा भाषा सौष्ठवना कारणे ध्यानाकर्षक छे. सम्पादके कर्ता सम्बन्धी पर्याप्त विगतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपी छे. कृतिना पाठमां क्वचित् शुद्धिस्थान छे :

श्लो.	अशुद्ध	शुद्ध
३३	विणम्मवियं	वि**णि**म्मवियं
१६८	नियमा	निय**या**
२०९	भदियाए	**म**ट्टियाए
२५०	जहामुहं	जहा**सु**हं

गा० ८०नी चूर्णिमा ०मुद्-मोषा० छे ते वाचनभूल लागे छे. प्रसंगप्राप्त **०मुद्ग-माषा०** संगत बने.

'चतुर्विंशतिस्तोत्रद्वय' द्वारा बे नवां स्तोत्रो उमेराय छे. विद्वानो पोताना सर्जनकाळना प्रारम्भे अथवा पछी पण शिष्यादिनी विनंतिथी आवी नियत ढांचानी रचना करवा प्रेराता होय छे अने तेथी आवी रचनाओ कंइक क्लिष्ट बनी रहे छे. प्रथम स्तोत्रना श्लो० १४ मां 'श्रमणगुणीनाम्' वंचायुं छे पण त्यां 'णा' नो 'णी' वंचायो जणाय छे. 'श्रमणगणानां' पाठ सुसंगत छे. यमकबन्ध आ कृतिमां शिथिल छे ज, तेथी '०रमणीनां'नी सामे ०गणानां कविने स्वीकार्य हशे- एम समजी शकाय छे.

द्वितीय स्तोत्रना अन्तिम श्लोकमां 'ध्रीद्वैत' छे त्यां '**ध्रिद्वैत**' समजवुं जोईए. 'द्वय'ने बदले कविए 'द्वैत' शब्द छन्दनी आवश्यकताना कारणे लीधो छे.

ज्ञानतिलकप्रणीत स्तोत्रत्रय कविना कवित्व अने शब्दसमृद्धिना परिचायक छे. ते ते काळे प्रवर्तमान साहित्यप्रवाहोने कविओए केवी रीते आत्मसात् कर्या छे तेनी आवा स्तोत्रो द्वारा झांखी थाय छे.

'सुमति-कुमति-वाद' गीतनी त्रीजी कडी अपूर्ण अथवा भ्रष्ट रहे छे. आना कर्ता 'लाल विनोदी' ए 'लालविजय' नहीं पण 'विनोदीलाल' नामे गृहस्थ कवि होवानो संभव वधारे छे.

'पुष्पमालाचिंतवणी' ए गणितचमत्कारनी रचना छे. गमे ते ३१ वस्तुओ पर आवी रमत योजी शकाय. आ रमत आजे पण जुदा जुदा विषयो पर प्रचलित छे. ३१ नामोनुं एक पत्रक होय अने एमांनां ३१ नामो अलग अलग पत्रकोमां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्तिपूर्वक नोंधेला होय. जेमके २१मुं नाम १६, ४ तथा १ क्रमांकवाळा पत्रकोमां लखेलुं होय, जेनो सरवाळो २१ थशे. पृच्छक ने ३१मांथी गमे ते एक नाम धारी लेवानुं कहेवामां आवे, त्यार बाद क्या क्या पत्रकमां ए नाम छे ते पूछवामां आवे. १, २, ४, ८ अने १६ एवी संख्या ए पत्रको पर बीजाने ध्यानमां न आवे एवी रीते लखेली होय, अथवा तो प्रयोगकर्ताए पत्रकोना रंग के आकारना आधारे मनमां नोंधी राखी होय. जेटला पत्रकोमां धारेलुं नाम हाजर होय तेटलानो मात्र सरवाळो प्रयोगकर्ता मनमां करतो जाय अने जे अंक आवे ते नाम कही आपे. गणितना रहस्यथी अजाण होय तेवा लोको आश्चर्यचकित थाय.

प्रस्तुत रचनामां फूलोनां नाम अने तेना आधारे दूहा योज्या होवाथी रमत विशेष रसप्रद बनी रहे छे.

जैन संघमां सरस्वती देवी आजे जे रूपे मान्य-पूज्य छे तेवा ज रूपे सरस्वती देवीनुं वर्णन प्राचीन अर्धमागधी भाषाना आगमो तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थोमां मळतुं नथी- एवो निष्कर्ष आपतो प्रो. सागरमल जैननो लेख साहित्यिक अने पुरातात्त्विक साक्ष्योना सघन निरीक्षण-परीक्षण पछी लखायो छे. प्राचीन निर्ग्रन्थ परम्परामां देवी-देवताने स्थान न हतुं. जिनवाणीने ज श्रुतदेवता कहीने नमस्कार थतो. समय जतां देवीना स्वरूपनुं तेना पर आरोपण थयुं हशे ने उपासना शरु थई हशे - एवुं आ लेखनुं तात्पर्य छे.

'निर्णयप्रभाकर' नामक एक शास्त्रार्थ विषयक ग्रन्थनो परिचय आ अंकमां छे. आमांथी एक आश्चर्यजनक तथ्य आपणने जाणवा मळे छे के श्री झवेरसागरजी महाराज तथा श्री राजेन्द्रसूरि वच्चेना विवादमां निर्णायक तरीके खरतरगच्छीय बे महात्माओ स्वीकृत थया हता. ए समये विवादो अने शास्त्रार्थो सामान्य वस्तु हती, एमां निर्णायक तरीके अजैन विद्वानो पण बेसता. अन्यगच्छीय विद्वान मुनिओने निर्णायक पदे स्थापवानी घटना विरल गणाय.

जैन देरासर, नानी खाखर-३७०४३५,
कच्छ, गुजरात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवां प्रकाशनो

१. सिरिकुम्मापुत्तचरिअम् :

कर्ता : आचार्यश्रीहेमविमलसूरिशिष्य-मुनिश्रीजिनमाणिक्यविजयजी

प्र. भद्रंकर प्रकाशन, अमदावाद, ई.स. २००९

ई.स. १९१९मां पण्डित हरगोविन्ददासे आ ग्रन्थनुं संशोधन करीने संस्कृतछाया साथे जैनविविधसाहित्यशास्त्रमाला अन्तर्गत छपाव्यो हतो. त्यार पछी ई.स. १९३३मां गुजरात कॉलेज द्वारा आ ग्रन्थ पुनःप्रकाशित थयो हतो, जेमां प्रो. के.वी. अभ्यंकरे अनेक हस्तप्रतोना आधारे संशोधित-सम्पादित करेली वाचना, तेमना ज द्वारा थयेला अंग्रेजी अनुवाद साथे मूकवामां आवी हती. आ बन्ने ग्रन्थोना आधारे आ चरित्रनुं पुनः सम्पादन साध्वीजी श्रीचन्दनबालाश्रीजीए कर्युं छे.

ग्रन्थमां उपर नोंधेला संस्कृत-अंग्रेजी अनुवादनी साथे, पण्डित अमृतभाई पटेल द्वारा करवामां आवेला गुजराती-हिंदी अनुवाद पण मूकवामां आव्या छे. परिशिष्ट तरीके शुभवर्धनगणि अने बालचन्द्रसूरि द्वारा रचित कूर्मापुत्रर्षिकथानकोनो पण आ ग्रन्थमां समावेश करवामां आव्यो छे.

२. रात्रिभोजन त्याग आवश्यक क्यों ?

लेखिका : साध्वी स्थितप्रज्ञाश्रीजी

प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ, ई.स. २००९

आ पुस्तकमां रात्रिभोजन शा माटे छोडवुं जोइए तेनुं सुन्दर रीते प्रतिपादन करवामां आवेलुं छे. फक्त धार्मिक रीते ज नहीं, परन्तु विज्ञान-पर्यावरण-आरोग्य वगेरे दृष्टिकोणथी पण रात्रिभोजनत्याग विशे विचार करवामां आव्यो छे- जे आ पुस्तकनी विशेषता छे. लेखिकाए स्वकथनना समर्थनमां आगमो, पुराणो, प्रकरणो वगेरे ग्रन्थोमांथी आपेला अनेक साक्षिपाठोने लीधे प्रतिपादन अधिकृत अने महत्त्वपूर्ण बन्युं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दप्रद माहिती

अनुसन्धान पत्रिकाना १ थी ४८ अर्थात् अद्यावधि प्रकाशित तमाम अंको, भारत-बहारना देशोमां वसेला विद्वानो तथा अभ्यासीओ माटे, निम्नांकित website पर उपलब्ध छे.

www.Jainlibrary.org

(non-commercial websites, Free of charge Access)

भारतथी बहारना देशोमां आ पत्रिका पुस्तकरूपे मोकलवानुं हवे बंध करवामां आवेल छे. तेथी आ website नो उपयोग करवा विनंती. हवे पछी प्रगट थनारा अंको पण आमां मळशे.

वधुमां, अमारा द्वारा प्रकट थता संस्कृत अयनपत्र "**नन्दनवनकल्पतरु**"ना अद्यावधि प्रकाशित १ थी २२ अंको पण उपरोक्त website पर उपलब्ध छे. रस धरावता सुज्ञोए उपयोग करवा विनंति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org